द्वितीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिंदी नाटकों में परंपरा और आधुनिकता का समवाय

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की जीवन-दृष्टि में समय के साथ एक बड़ा परिवर्तन आता चला गया, जिसका पहला मूल कारण राजनैतिक परिवर्तन था तथा दूसरा आर्थिक विघटन। इसके अतिरिक्त औद्योगिकीकरण, पाश्चात्य जीवन-मूल्य, शिक्षा, आधुनिक विज्ञान तथा सूचना क्रांति आदि ने पूरे भारतीय समाज का ढांचा बदलकर रख दिया था।

व्यक्ति के समूह से समाज का निर्माण होता है। आरंभ से ही मनुष्य ने अपने विकास के लिए स्वयं को संगठित किया, जिससे वह सुरक्षित रह सके। इस धरती के विभिन्न हिस्सों पर धीरे-धीरे अलग-अलग समाज का निर्माण होता गया। हर समाज में अलग-अलग संस्कृतियों और परंपराओं का विकास होने लगा, जिसका अनुसरण करना समूह के हर व्यक्ति का कर्त्तव्य समझा जाने लगा। प्राचीनकाल से व्यक्ति और समाज के संबंध पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार-विमर्श किया जाता रहा है। यदि प्राचीन और मध्यकाल की बात की जाए, तो उस समय 'धर्म' समाज के केंद्र में था, जिसमें परंपरा और संस्कृति को जोड़कर देखा जाता था। साथ ही धर्म का सर्वोच्च स्थान निर्धारित था तथा इसका महत्त्व अक्षुण्ण था। ऐसे में धर्म का पालन सर्वोपरि माना जाता था। आधुनिक काल में परंपराओं और संस्कृतियों का स्वरूप बदलता चला गया। मनुष्य ने धीरे-धीरे अपने समाज और अपनी जीवन-शैली से उन विश्वासों को निकाल फेंका, जो जड़ हो गए थे। इससे समाज और व्यक्ति की जीवन-शैली में परिवर्तन आने लगा। मनुष्य की चिंतनशैली भी बदलती चली गई। धीरे-धीरे समाज भी बदलता चला गया। भारत में आरंभ में लोगों ने ऐसी रूढ़ परंपराओं का त्याग किया, जो समाज के लिए त्याज्य थीं, जैसे- सती प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि।

स्वतंत्रता के पश्चात लोगों ने यह उम्मीद की थी कि देश में राजनैतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप समाज और व्यक्ति के जीवन में सुधार आएगा, शिक्षा और रोजगार के बढ़ने से लोगों में नव चेतना का विकास होगा। स्वातंत्र्योत्तर भारत में परिवार, आस्था, परंपरा जो भारतीय जीवन के केंद्र में थी, वह टूटती गई। लोगों ने धीरे-धीरे ऐसी परंपराओं का अनुशीलन करना आरंभ कर दिया, जो पश्चिम से आई थीं, जैसे- एकल परिवार, अनैतिक संबंध, भोगवादी दृष्टिकोण आदि। जबकि भारतीय परंपरा अनेकता में एकता, संयुक्त परिवार, संबंधों में मधुरता और परिवारवाद में आस्था पर आधारित रही है। स्वतंत्रता के बाद लोगों की उपभोकतावादी जीवन-दृष्टि भारतीय परंपरा को भूलाने लगी, जिससे भारतीय समाज का रूप बदलता चला गया। किसी भी देश की परंपराओं और संस्कृति से उस देश की पहचान होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक इन्हीं खंडित आधुनिक सामाजिक, मूल्यों को चित्रित करता है।

साहित्य और समाज में गहरा संबंध है। जीवन-दर्शन और जीवन-मूल्य रहित साहित्य मनोरंजन मात्र का साधन है। श्रेष्ठ साहित्य अपने समाज का आईना होता है। साहित्य को युगसृष्टा और भविष्यदृष्टा भी कहा जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जीवन-शैली में परिवर्तन आया और मानव-मूल्य परिवर्तित होते चले गए। इस द्वन्द्वोन्मुख समाज और समय को व्यक्त करने में हिंदी नाटक सफल रहा है। हिंदी नाट्य विधा की यह विशेषता रही है कि वह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज, परंपरा के मूल्यों, बदलते आधुनिक जीवन के सकारात्मक-नकारात्मक मूल्यों आदि को अभिव्यक्त करने में सफल रही है।

स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने अपने नाटकों में भावनात्मकता के साथ-साथ तर्क, बुद्धि, जीवन-यथार्थ, व्यक्ति, परिवार, समाज तथा मानवता को स्थान दिया है। साथ ही इन नाटकों ने जीवंत परंपरा को ग्रहण किया है, जिसमें पौराणिक कथाओं तथा मिथकीय ऐतिहासिक आख्यानों को भी आधार बनाया है। यहाँ परंपरा और इतिहास को ग्रहण करने का अर्थ उन्हें दोहराना नहीं है, बल्कि समकालीनता को प्रकट करना है। इसके अतिरिक्त समकालीन नाटकों में मिथक आधुनिकता को

चित्रित करने का एक सशक्त माध्यम मात्र है। स्वातंत्र्योत्तर नाटक स्वतंत्रतापूर्व नाटकों से इस रूप में भिन्न हैं कि इस समय के नाटकों का नाट्य शिल्प, भाव, वस्तु कई मायने में भिन्न है। कुसुम खेमानी अपनी पुस्तक 'हिंदी नाटक के पांच दशक' में लिखती हैं, "इन नाटकों की विशेष उपलब्धियाँ हैं- यथार्थवादी दृष्टिकोण से महानगरीय जीवन की विसंगतियों का उद्घाटन, पाश्चात्य जीवन-मूल्यों से अनुशासित जीवन की पड़ताल, आंतरिक और बाह्य द्वंद्व का उद्घाटन।"[1]

महानगरीय जीवन बोध को लेकर लिखे गए आधुनिक नाटकों में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विसंगतियों से उत्पन्न अनास्था, क्षणवादी दृष्टिकोण, अस्तित्व के संकट आदि विषयों को स्थान दिया गया है। उपर्युक्त विषयों पर लिखे गए नाटकों में मिथक, बिंबों और प्रतीकों का बहुलता से प्रयोग किया गया है। नाट्य कथ्य को सशक्त रूप से प्रस्तुत करने में मिथक, बिंबों और प्रतीकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मिथक का प्रयोग हिंदी नाटक में आरंभ से हो रहा है। आरंभ में इनका प्रयोग नाटकों में आदर्श जीवन रूपों को चित्रित करने के उद्देश्य से किया जाता था, किंतु आज के नाटकों में इनका प्रयोग समकालीन आधुनिक जीवन और उनकी विषमताओं को चित्रित करने के लिए किया जा रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों ने आधुनिक नाट्य रंग आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने ऐसे नाटकों की रचना की जो स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक, राजनैतिक हालातों के साथ-साथ मनुष्य के आंतरिक जटिल जीवन को भी व्यक्त करने में सफल रहे हैं। इस काल के नाटककारों ने हिंदी नाट्य यात्रा में नए प्रयोगों द्वारा आधुनिक जीवन-पद्धति को चित्रित किया है। उनमें मुख्य हैं- जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, शंकर शेष, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, दयाप्रकाश सिन्हा, गिरिराज किशोर, मुद्राराक्षस, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिन कुमार अग्रवाल, सुरेन्द्र वर्मा, कुसुम कुमार आदि।

2.1 कोणार्क

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों में सर्वप्रथम जगदीश चंद्र माथुर का नाम लिया जाता है। इन्हें आधुनिक नाट्य परंपरा का प्रथम प्रौढ़ नाटककार माना गया है। इनका 'कोणार्क' नाटक आधुनिक नाट्य रंग आंदोलन का ऐसा प्रथम नाटक है, जिनमे समकालीन जीवन का बोध ऐतिहासिक और मिथकीय कथा के माध्यम से होता है, " 'कोणार्क' नाटक को सन् 1950 और 1955 के बीच लिखित हिंदी नाटकों में सर्वश्रेष्ठ घोषित होने का गौरव प्राप्त हुआ- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने उसे यह पुरस्कार दिया था।"[2]

इस नाटक का संबंध प्रसिद्ध कोणार्क मंदिर के इतिहास और उससे जुड़ी किंवदंतियों से है। इस नाटक में घटना कम और स्थितियां अधिक हैं। नाटक की कथावस्तु पर दृष्टि डालें, तो यह नाटक कोणार्क में स्थित भव्य सूर्य मंदिर के ऐतिहासिक निर्माण की पृष्ठभूमि में मानवीय संवेदना को प्रकट करने का प्रयत्न करता है। सूर्य मंदिर का निर्माण उत्कल नरेश नरसिंह देव की आज्ञा से हुआ था। नरसिंह देव बाहरी देशों के साथ युद्धों में व्यस्त रहता है। ऐसे में महामात्य मंदिर की देख-रेख करता है, किंतु महामात्य शिल्पियों पर अत्याचार करता है। सूर्य मंदिर के निर्माण के साथ एक प्रणय-कथा भी जुड़ी हुई है। कथा का संबंध प्रधान शिल्पी विशु और चंद्रलेखा के प्रेम-प्रणय से जुड़ा हुआ है। विशु चंद्रलेखा से प्रेम करता है, किंतु चंद्रलेखा के गर्भधारण करने पर उसे छोड़कर भाग जाता है। इस नाटक का मूल्यांकन करें, तो यह समकालीन समाज में व्याप्त विसंगति को दर्शाता है, जिनमे प्रेम का अर्थ बदल चुका है। आज दो लोगों के बीच विश्वास जैसी वस्तु कहीं खोती जा रही है। प्रेम में संबंध सतही मात्र रह गया है। अतः जगदीश चंद्र माथुर का यह नाटक इन संदर्भों में अपने समय का भविष्यदृष्टा है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा। कथा में आगे विशु का पुत्र धर्मपद बीस वर्षों के बाद मंदिर के बारे में सुनकर विशु के साथ काम करने आता है। इधर मंदिर का निर्माण होने के पश्चात उत्कल नरेश मंदिर को देखने आते हैं, किंतु महामात्य छल से सत्ता पलट देता है और स्वयं को राजा घोषित कर देता है। ऐसे में राजा की ओर से धर्मपद पांच हजार शिल्पियों को युद्ध करने के लिए

आह्वान करता है, किंतु धर्मपद युद्ध में मारा जाता है। विशु को जब यह ज्ञात होता कि धर्मपद उसका अपना पुत्र था, तब विशु तड़प उठता है और शिल्पियों के प्रतिकार के रूप में मंदिर को गिरा देता है। मूलतः यह एक कलाकार और उसके संघर्ष की गाथा है, जहाँ कलाकारों के साथ शासकीय बर्बरता और उससे उपजे मनोभाव को नाटककार ने चित्रित किया है, "श्रमिकों के जागरण और कला पर राजकीय बर्बर राजनीति का प्रवेश कलाकार के मन में किस प्रकार का भाव पैदा करता है, इस कृति से ज्ञात होता है।"[3] इस नाटक में नाटककार ने इतिहास और मिथकीय कथा द्वारा जीवन की जटिल अनुभूतियों को प्रकट किया है। शिल्पकार या कलाकार अपने कला-कौशल से प्राचीनकाल से न जाने कितनी कला-कृतियां संसार को देते आए हैं। उनकी कला-कृतियां सदियों तक लोगों के बीच आकर्षण का केंद्र रहती हैं, किंतु कलाकार गुमनामी के अंधेरे में ही रह जाता है। जगदीश चंद्र माथुर 'कोणार्क' पर अपने एक वक्तव्य भाषण में कहते हैं, "कोणार्क के खंडहरों का सहारा लेकर एक रोचक कथा-पट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग-युग से गौण पौरुष, जो सौंदर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने को भुला जाता है, कोणार्क के खंडन के क्षण फूट निकला हो। चिरंतन मौन पौरुष ही उसका अभिशाप है, उस पौरुष को वाणी देने की मैंने धृष्टता की है।"[4] एक शिल्पकार अमूर्त्त को भी मूर्त्त बना देता है, किंतु इन कलाकारों के साथ शासकों द्वारा बर्बरता की गयी है। मिथकीयता और ऐतिहासिकता का समावेश कर परंपरा और संस्कृतियों में अपना अमूल्य योगदान देने वाले विस्मृत पात्रों के जीवन-संघर्ष, युगबोध और युग-समस्याओं को आधुनिक दृष्टि से चित्रित करने में नाटककार पूर्णतः सफल हुआ है। धर्मपद की इन पंक्तियों से इनके संघर्ष का बोध होता है, "जीवन का पुरुषार्थ, आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई- जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ, तो मुझे याद आती है पसीने से नहाते हुए किसान की, कोसों तक नौका खेने वाले मल्लाह की..."[5]

2.2 अंधा युग

सन 1950 के बाद के हिंदी साहित्य को देखें, तो लगभग सभी विधाओं में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से परिवर्तन आया है। इसके अतिरिक्त लेखकीय चेतना दृष्टि भी एक आंदोलन के समान दिखाई देती है। इस दशक में नाट्य विधा में एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। इस दशक में जो नाट्य चेतना जागृत हुई, वह रंगमंच से सही मायने में जुड़ी, तभी इस काल में नवीन नाट्य परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस क्रम में धर्मवीर भारती और उनके नाटक 'अंधा युग' का नाम उल्लेखनीय है। इनका 'अंधा-युग' नाटक पौराणिक कथानक और चरित्रों के माध्यम से आधुनिक भाव-बोध प्रस्तुत करता है। काव्य नाटक के रूप में यह आधुनिक समकालीन संदर्भो को बड़ी सजगता के साथ चित्रित करता है।

समकालीन युग परिवेश से जन्मे इस नाटक को कालजयी और क्लासिक नाट्य रचना कहा जाता है। महाभारत के पौराणिक कथानक और चरित्रों के माध्यम से मुख्यतः आधुनिक मानवीय जीवन और उसकी आत्महीन और विवेकहीन जीवन-दृष्टि को इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है, जो उसे विनाश की ओर धकेलता है। महाभारत के युद्ध और अंत के परिणाम के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणाम को प्रस्तुत किया गया है। युद्ध में हार-जीत किसी की भी हो, नुकसान मानवता का ही होता है। मनुष्य घृणा, उपेक्षा, द्वेष, बदले की भावना, आक्रोश आदि में आकर अपना विवेक खो देता है और युद्ध की स्थिति पैदा कर देता है। महाभारत का युद्ध हो या द्वितीय विश्वयुद्ध, दोनों ही युद्धों में मनुष्य ने अपने विवेक को खोकर बदले की भावना से सिर्फ विनाश को ही जन्म दिया है। धर्मवीर भारती ने अपने इस गीति-नाट्य में महाभारत के कथानक और चरित्रों के माध्यम से इस आधुनिक विनाश को चित्रित किया है,

"टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा

उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है

पांडव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा

यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है।

यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय

दोनों पक्षों को खोना ही खोना है।"[6]

'अंधायुग' नाटक का आरंभ संस्कृत नाट्य-परंपरा की याद दिलाता है, जिसमें नाटक का आरंभ सरस्वती वंदना, प्रस्तावना एवं उद्घोषणा से होता है। इस नाटक में प्राचीन परंपरा से जोड़ते हुए काल के अंतराल को पाटते हुए ध्वनियों में आधुनिक जीवन की विसंगतियों, मनोवृत्तियों कुंठाओं तथा आत्मपराजित लोगों की मनोदशा को चित्रित किया गया है। इस नाटक में अंधों के द्वारा ज्योति की कथा कहने का प्रयास किया गया है। यह नाटक छः अंकों में विभाजित है। नाटक का नाम सार्थक और प्रतीकात्मक है। नाटक के अंको का नामकरण देखें, तो इनके नाम मानो किसी ऐसी कथा के प्रतीकों के माध्यम से संकेत दे रहे हों, जिसकी कथा की शुरुआत किसी बसी-बसायी नगरी की हो और अंत मानो किसी विनाश से, जहाँ प्रभु की मौत तक हो जा रही हो अर्थात् सारी आस्था, विश्वास और मानवता का अंत हो चुका हो। नाटक के अंकों के नाम इस प्रकार हैं- (अ) कौरव नगरी, (आ) पशु का उदय, (इ) अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य (पंख, पहिये, और पट्टियाँ), (ई) गांधारी का शाप, (उ) विजय : एक क्रमिक आत्महत्या, (ऊ) प्रभु की मृत्यु। नाटक के सभी अंक 'अंधा युग के जटिल संसार, आस्था-अनास्था, द्वंद्व, कुंठा, आशा-निराशा, घृणा, भय, आतंक, अमर्यादा आदि को प्रतीकों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इन सभी को मिलाकर एक नए जीवन-सौंदर्य को तलाशने का प्रयास किया गया है, जिससे इस नाटक का स्वरूप आधुनिक सत्य को उद्घाटित करने में विराट-सा प्रतीत होता है। आज आधुनिक मानव भी जीवन के इन सभी विकारों और प्रवृत्तियों के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है।

उक्त नाटक के सभी पात्र आधुनिक मनुष्य को संबोधित करते हैं। आधुनिक मनुष्य की भांति ही नाटक के सभी पात्र अनास्था, द्वंद्व, कुंठा, निराशा, आशा, घृणा, भय, आतंक, अमर्यादा आदि से ग्रसित हैं। इस नाटक का कथानक मुख्य नहीं है, बल्कि इसके चरित्र मुख्य हैं। नाटक के सभी पात्र मिलकर कथा को सुनियोजित करते हैं। नाटक के अधिकतर पात्र अपने अंदर ही जीते रहते हैं। द्वंद्व, यातना और वेदना झेलते रहते हैं। नाटक में कृष्ण, धृतराष्ट्र, संजय और अश्वथामा एक व्यक्ति के स्थान पर प्रवृत्तियों के पर्याय हैं। धृतराष्ट्र नाटक में एक ऐसे शासक का प्रतीक है, जो अंधा है। न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि वह अपने पुत्र मोह में भी अंधा है। वह दुर्योधन के अनैतिक कार्यों पर रोक नहीं लगाता, बल्कि सत्ता के लालच में विदुर के बार-बार समझाने पर भी मूक शासक बना रहता है। धृतराष्ट्र सत्य को जानकर भी उससे दूरी बनाकर रखता है। धृतराष्ट्र का लोभ और स्वार्थ नाटक की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है, वह युयुत्सु से कहता है कि,

"वत्स तुम मेरी आयु लेकर भी

जीवित रहो

अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र

यदि गिरा है उत्तरा पर

तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर

सब राजपाट तुमको ही सौंप दे !"[7]

इस प्रकार देखें तो धृतराष्ट्र आज के उस आधुनिक शासक या एक साधारण मनुष्य का प्रतीक है, जो गलत और अन्याय को देखकर भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं बोलता। कई बार अनैतिक कार्य के प्रति मूक रहना उसके समर्थन का सूचक है।

गांधारी के चरित्र की बात करें तो नाटक में वह सिर्फ परंपरावादी माता ही नहीं है, जिसकी ममता और करुणा अपने पुत्रों के प्रति है, जिसके कारण वह करुणा और क्रोध से कृष्ण तक को शाप दे देती है, किंतु माता के समान ही सत्य को जानकर फिर अत्यंत दुःख से भर उठती है। गांधारी के चरित्र में एक परंपरावादी माता की छवि उभरकर सामने आती है, तो दूसरी ओर एक ऐसी आधुनिक स्त्री का चरित्र भी, जो प्रश्न करती है। न्याय और अन्याय के इस युद्ध में वह कौरवों के साथ-साथ पांडवों को भी, यहाँ तक कि कृष्ण को भी दोषी मानती है, जिन्होंने सत्य को अपनी ओर अपनी सुविधानुसार मोड़ लिया। वह किसी को धर्म का पालन करते हुए नहीं पाती। वह दोनों पक्षों को आस्था, धर्म, आडंबर, मर्यादा, नीति, नैतिकता आदि अंधी प्रवृत्तियों का पोषक मानती थी। इसीलिए वह नाटक के चौथे अंक के अंत में दुर्योधन की मृत्यु के पश्चात और कृष्ण द्वारा अश्वत्थामा को शापित करने पर गांधारी अपना संयम खो देती है और इन सबके पीछे कृष्ण को दोषी ठहराते हुए उसे शाप दे देती है,

"तुम यदि चाहते तो रुक सकता था युद्ध यह

मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह

इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया

क्यों नहीं तुमने वह शाप दिया भीम को

जो तुमने दिया निरपराध अश्वत्थामा को

तुमने किया है प्रभुता का दुरुपयोग

यदि मेरी सेवा में बल है संचित तप में धर्म है

तो सुनो कृष्ण ! प्रभु या परात्पर हो कुछ भी हो

सारा तुम्हारा वंश इसी तरह पागल कुत्तों की तरह

एक-दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा

तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षो बाद

किसी घने जंगल में साधारण व्याघ के हाथों मारे जाओगे

प्रभु हो पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।"[8]

नाटक में अश्वत्थामा एक खंडित चरित्र है। उसके खंडित चरित्र के पीछे कारण है- उसके पिता की छलपूर्वक निर्मम हत्या। वह अपने पिता की हत्या से विकल हो उठता है। अश्वत्थामा दुर्योधन की ओर से पूरी आस्था से युद्ध करता है, किंतु अंततः वह पिता की हत्या से टूट जाता है। उसके चरित्र में अंतर्विरोध, संत्रास और घृणा भरी हुई है। अश्वत्थामा में किसी के प्रति जो भी आस्था है, वह समाप्त हो जाती है क्योंकि इस युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर अपने जीवन-मूल्यों को त्याग देते हैं अर्थात धर्मराज युधिष्ठिर के संदर्भ में यह कहा जाता है कि वह कभी झूठ नहीं बोलते थे, किंतु अश्वत्थामा के पिता की मौत के संदर्भ में वह अर्द्धसत्य ही कहते हैं, जिससे अश्वत्थामा में मौत के संदर्भ में भ्रम पैदा होता है। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर द्वारा कहे गए अर्द्धसत्य कि- 'अश्वत्थामा मारा गया-नर या कुंजर' के कारण वह पुत्र की मौत की जानकारी सुनकर युद्ध में हताश और टूट जाते हैं, जिससे युद्ध में उनकी मौत हो जाती है। इस झूठ के कारण अश्वत्थामा के अंदर मनुष्यता, दया-भावना, सच्चे योद्धा जैसे गुण खंडित हो जाते हैं। उसके अंदर एक बर्बर पशु का जन्म होता है। तभी वह उत्तरा के गर्भ में अजन्मे बच्चे की गर्भ में ही ब्रह्मास्त्र से हत्या कर देना चाहता है। इसके बाद कृष्ण उसे शापित कर देते हैं कि वह कभी नहीं मरेगा लेकिन कोढ़ी का जीवन जियेगा और सड़ता-गलता रहेगा,

"मैं तुम्हारा यह अश्वत्थामा

कायर अश्वत्थामा

शेष हूँ अभी तक

जैसे रोगी मुर्दे के

मुख में शेष रहता है

गंदा कफ बासी थूक

शेष हूँ अभी तक मैं।"[9]

इस प्रकार अश्वत्थामा प्रतीक है उस आधुनिक मनुष्य का, जो गलत कार्यो में लिप्त लोगों का समर्थन करता है। उसके अनैतिक कार्यो में साझेदार होता है। धीरे-धीरे समय के साथ अपने साथ वाले के पतन के साथ उसके चरित्र और जीवन का भी पतन हो जाता है, जिस प्रकार दुर्योधन का साथ देने पर अश्वत्थामा का चरित्र और संपूर्ण जीवन खंडित हो जाता है। इस प्रकार नाटक में अश्वत्थामा के पौराणिक चरित्र के माध्यम से एक खंडित मनुष्य का चित्रण किया गया है।

युयुत्सु एक ऐसा पात्र है, जिसकी स्थिति मार्मिक है। विपक्षी पांडवों का युद्ध में साथ देने अर्थात सत्य की ओर से युद्ध करने पर वह कौरवों द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होता है। यही नहीं, वह अपनी माँ द्वारा भी अपमानित होता है। युयुत्सु के व्यक्तित्व की विशेषता है कि वह दूसरे कौरवों की तरह विवेकशून्य होकर युद्ध में दुर्योधन के पीछे नहीं हो लेता, बल्कि वह अपने जीवन का मार्ग स्वयं तय करता है अर्थात सही-गलत का फैसला अपने विवेक से करता है। सत्य के मार्ग पर चलने पर युयुत्सु को परिवार सहित अपनी माँ तक से उपेक्षा और अपमान मिलता है, जिससे वह टूट जाता है,

"मेरा अपराध ही सिर्फ इतना है

सत्य पर रहा मैं दृढ़

मैं भी हूँ कौरव

पर सत्य बड़ा है कौरव वंश से।"[10]

युयुत्सु का चरित्र आज के आधुनिक समाज का प्रतीक है, जो किसी भी परिस्थिति और हालात में अन्याय का साथ नहीं देता है। चाहे उसके लिए उसे अपनो का साथ और उनकी उपेक्षा और अपमान ही क्यों न सहना पड़े। वह किसी भी परिस्थति में सत्य को धारण करने वाला होता है लेकिन आज आधुनिक समय का यह कटु सत्य बन चुका है कि सत्य का साथ देने वाला और उचित मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति युयुत्सु की ही भांति उपेक्षित, तिरस्कृत और अपमानित होता रहता है।

नाटक में विदुर एक ऐसा पात्र है, जो अपनी भावनाओं में जीता है। वह कौरवों का साथ देता है। वह धृतराष्ट्र द्वारा लिए गए विवेकहीन निर्णय और कौरवों की अनीति के प्रति तटस्थ तथा उदासीन रहता है। पांडवों के प्रति उसका आचरण सकारात्मक है। अतः विदुर का चरित्र आज के उस आधुनिक मानव का प्रतीक है, जिसका व्यक्तित्व दुर्बल होता है। वह न्याय और अन्याय के पक्षों को जानकार भी मौन रहता है। उसका आंतरिक चरित्र तो सत्य का साथ देना चाहता है, किंतु उसे संरक्षण असत्य का मिलता रहता है।

कृष्ण एक राजनीतिज्ञ और दार्शनिक हैं, जो एक युगपुरुष के रूप में अपने युग के इतिहास के नियामक हैं। नाटक में उनके चरित्र के संदर्भ में सभी के अपने-अपने मत हैं क्योंकि एक युगपुरुष अपने समय में किसी व्यक्ति के प्रति ऐसा ही आचरण रखता है, जो भविष्य का निर्माण करता हो और समूल मानव जाति के हित में हो। कृष्ण की नीति सबके लिए अलग थी, "बलराम उन्हें 'कूट बुद्धि' कहते हैं, गांधारी और अश्वत्थामा उन्हें 'अन्यायी' की संज्ञा देते हैं। गांधारी कृष्ण पर 'प्रभुता' के दुरुपयोगों का दोषारोपण करती है।"[11] कृष्ण के व्यक्तित्व के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। वह अर्जुन के प्रेरणास्रोत और शक्ति हैं, तो गांधारी को माता का दर्जा देते हैं। गांधारी के शाप देने पर वह क्रोधित या विचलित नहीं होते। मर्यादित रूप से वह उनके शाप को स्वीकार कर लेते हैं।

नाटक में 'दो प्रहरी' और 'वृद्ध याचक' महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। ये दो प्रहरी पूरे अंधायुग के साक्षी और प्रतिनिधि हैं। मूलतः कहें तो वे आधुनिक समाज के हर एक उस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो न्याय-अन्याय, जीत-हार हर घटना के साक्षी होते हैं। दोनों प्रहरी दृष्टा भी हैं और भोक्ता भी हैं। नाटक में उनकी उक्तियाँ समकालीन विडंबना से नाटक को जोड़ती हैं। इन दो प्रहरियों के संदर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखते हैं, "प्रहरी ही वस्तुतः 'अंधायुग' की संपूर्ण व्यंजना के साक्षी हैं- प्रतिनिधि हैं। दृष्टा-भोक्ता वे सब हैं। वे दोनों ही अपनी उक्तियों से इस रचना को समकालीन यथार्थ से मानवीय विडंबना से जोड़ते हैं।"[12]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि धर्मवीर भारती कृत यह नाटक एक क्लासिकल गीति नाट्य रचना है, जो महाभारत के पौराणिक कथानक, प्रसंगों, घटनाओं और पात्र के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप आधुनिक मानव और उनके अंतर्द्वंद्व, मूल्यहीनता, खंडित व्यक्तित्व, घृणा, उपेक्षा, द्वेष, बदले की भावना, आक्रोश आदि को चित्रित करता है। यह नाटक युद्ध के पश्चात नैराश्य, विकृत, असंगत और ग्लानिजनक वातावरण को चित्रित करता है तथा द्वंद्व में उलझे प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करता है।

2.3 सूर्यमुख

स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम अग्रणी नाटककारों में आता है। लाल भारतीय और पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियों से प्रभावित रहे हैं। उन्होंने अपने नाटकों में व्यक्ति से लेकर विश्व की विभिन्न अनुभूतियों को समेटकर नाट्य विषय बनाया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत समस्याएँ बढ़ती चली गईं। लाल ने अपने नाटकों में समस्याओं को ही केंद्र में रखा है। नाटक यथार्थवादी हो, सामाजिक या मिथकीय, उनका मत था कि सभी नाटकों के केंद्र में समस्या को उद्घाटित करना ही नाटककार का उद्देश्य होता है। इस संदर्भ

में वे लिखते हैं, "समस्या चाहे जैसी, जिसकी हो पर समस्या ही मूल प्राण है किसी नाट्य रचना की।"[13] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लगभग 32 नाटकों की रचना की है, जिनमे प्रमुख नाटक हैं- सूर्यमुख, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु, एक सत्य हरिश्चंद्र, नरसिंह कथा, यक्ष- प्रश्न, राम की लड़ाई और बलराम की तीर्थयात्रा। इन सभी नाटकों में लाल ने मिथकीय कथानक के माध्यम से परंपरा और आधुनिकता के प्रश्नों को उठाया है, जिनमें स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, राजनैतिक और व्यक्तिगत समस्याओं को प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया है। 1968 ई. में लिखे गए 'सूर्यमुख' नाटक पर दृष्टि डालें तो इस नाटक में भारतीय परंपराओं का उपहास देखने को मिलता है। नाटक का कथानक मिथकीय तथा पात्र पौराणिक और मिथकीय दोनों हैं लेकिन नाटककार का उद्देश्य इस नाटक के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को उजागर करना है तथा अपने परंपरागत मूल्यों के प्रति आधुनिक समाज की अवमानना चित्रित करना है। नाटक के कथानक और पात्र महाभारत और पुराण से लिए गए हैं। यह नाटक उत्तर महाभारत की मिथकीय कथा के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत विषमताओं को उजागर करता है। इसमें मिथकीय कथानक के माध्यम से आधुनिक रूपों को चित्रित किया गया है।

नाटक के कथानक के स्रोत पर एक दृष्टि डालें तो इसकी कथा उत्तर महाभारत की है, जहाँ महाभारत के अंत में कौरव पुत्रों की मृत्यु से विक्षिप्त माता गांधारी कृष्ण को युद्ध का दोषी मानती है। क्रोधवश गांधारी कृष्ण को शाप देती है कि जिस प्रकार उन्होंने कौरवों और पांडवों को आपस में लड़ाकर समूल कौरव वंश का अंत कर दिया, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी एक बहेलिये के हाथों होगी और उनके कुल का अंत भी आपस में लड़ते-झगड़ते ही होगा। कृष्ण की बहेलिये के हाथों मृत्यु और यदुवंशियों का आपस में युद्ध का उल्लेख पुराण कथाओं में मिलता है।

नाटक की कथा में मिथक इन संदर्भो में आता है कि इस नाटक में कृष्ण की अंतिम पत्नी 'विनुरति' नामक एक पात्र को प्रस्तुत किया गया है, जबकि विनुरति नामक किसी भी कृष्ण की पत्नी का जिक्र

महाभारत या पुराण में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त नाटक में विनुरति का प्रेम-संबंध कृष्ण और रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न से दिखाया गया है। नाटक में कृष्ण और प्रद्युम्न के मध्य जिस द्वंद्वात्मक स्थिति का चित्रण किया गया है, वह महाभारत या पुराण में देखने को नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त व्यास के पुत्र को नाटक में अत्यंत नीच और एक षड्यंत्रकारी चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है, जो मूल कथा से साम्य नहीं रखता।

'सूर्यमुख' नाटक में महाभारत के युद्ध के पश्चात युद्ध की विभीषिका दिखाई गई है। युद्ध के पश्चात बीमारी, भुखमरी, बाढ़, महंगाई आदि का प्रकोप दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त प्रद्युम्न का आत्मनिर्वासन, प्रद्युम्न और विनुरति के संबंध को लेकर द्वारिका में लोगों के बीच क्षोभ और गुस्सा, द्वारिका की स्त्रियों के साथ-साथ अर्जुन द्वारा विनुरति को हस्तिनापुर ले जाना, प्रद्युम्न का राजमुकुट छोड़कर विनुरति की खोज में निकलना, प्रद्युम्न का द्वारिका आना और शाम्ब और विभ्रु की तानाशाही से त्रस्त जनता के लिए युद्ध करना, शाम्ब और विभ्रु का द्वंद्व, प्रद्युम्न और विनुरति की विभ्रु से युद्ध करते हुए मृत्यु तथा रुक्मिणी के नवजात शिशु के माध्यम से नए युग का आह्वान करना, नाटक के मुख्य प्रसंग हैं।

'सूर्यमुख' नाटक की विशेषता इसमें नहीं है कि नाटक में उन्होंने महाभारतोत्तर परिस्थितियों और समस्याओं का चित्रण किया है, बल्कि इस नाटक की विशेषता इसमें है कि यह नाटक स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक समाज और व्यक्ति के जीवन और समस्याओं का सफलतापूर्वक चित्रण करता है। यह नाटक अपने पौराणिक कथानक और चरित्रों के कलेवर में भी प्रासंगिक है। यह नाटक 1968 ई. में लिखा गया था। उस समय भारत में राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से उथल-पुथल और विषमताओं का समय था। देश में राजनीतिक दल सत्ता-प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के विरोध में खड़े थे और आरोप-प्रत्यारोप का दौर जारी था। जनता राजनैतिक दलों के लिए मोहरे के समान थी। उनके सुख-दुःख और समस्याओं से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। ठीक वैसे ही जिस प्रकार नाटक में दिखाया गया है कि द्वारिका में भी राजनैतिक हालात ऐसे ही आधुनिक युगीन थे। राजनैतिक

लोलुप लोग स्वार्थ सिद्धि में जनसाधारण लोगों को विशेष महत्त्व नहीं दे रहे थे, "सब राजमहल के चोंचले हैं। प्रजा तो कीड़े-मकोड़े हैं। चाहे जलै-काको है चिंता हमारी।"[14] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत की जनता ने जिस जीवन की कल्पना की थी, वह पूरी नहीं हुई। स्वतंत्रता की लड़ाई में देश के जिन सपूतों और जनता ने त्यागकर जिस खुशहाल जीवन का स्वप्न देखा था, वह देश के इन नेताओं की निजी महत्त्वाकांक्षा की भेंट चढ़ गया। नाटक के आरंभ में दुर्ग के आगे भिखारियों की भीड़ खड़ी है, जो देश की आर्थिक परिस्थिति की परिचायक है। सत्ता-संघर्ष और उससे उत्पन्न परिस्थितियों का चित्रण व्याक के पुत्र के संवादों से किया गया है, "नगर में रोगियों, गुंडों और भिखारियों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि राह चलना कठिन है, वस्तुओं के दाम इतना बढ़ गये हैं कि मनुष्य अपने को बेचकर भी इन्हें नहीं खरीद के खा पाता।"[15]

आज की युवा पीढ़ी में एक आक्रोश है। देश के युवा पश्चिमी संस्कृति और परंपरा की ओर आकर्षित होकर अपनी परंपरा और संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे हैं। इस होड़ में आज के युवा का व्यक्तित्व द्वंद्व, कुंठा और निराशा से घिरा हुआ है। उसका भविष्य सुरक्षित नहीं है, जिससे उसके व्यक्तित्व में एक नकारात्मकता आ रही है, जिससे क्रोध और निराशा उनके चरित्र में पैदा हो रही है। उसमें अपनी परंपरा और अतीत के प्रति कोई आस्था नहीं है। युवाओं की इस अनास्था का बोध नाटक के इस अंश में होता है, "साम्ब इन बड़े-बड़े नामों को मत लो मेरे सामने, नहीं तो मैं तुम्हारी हत्या कर दूंगा, हमारा इन नामों से केवल यही संदर्भ शेष है।"[16]

पारिवारिक विघटन, संघर्ष, निराशा, अनास्था को भी इस मिथकीय महाभारतोत्तर कथा के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। उनका मानना था कि नवीन जीवन-मूल्य ही इस पारिवारिक विघटन, संघर्ष, निराशा, अनास्था को दूर कर सकते हैं। भारतीय परंपरा के प्रति अनास्था को चित्रित करने के लिए और आज के आधुनिक समाज और परिवार में खंडित होते रिश्तों को भी डॉ. लाल ने प्रद्युम्न और विनुरति के प्रेम संबंध के माध्यम से दिखाया है, जो भारतीय परंपरा के अनुसार अनैतिक है। आज आधुनिक समाज में बहुत-से ऐसे लोग मिल जाएंगे, जो ऐसे अनैतिक संबंधों को

भी पाश्चात्य परंपरा से प्रेरित होकर सही सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। नाटक में दुर्गपाल नाम का पात्र भी प्रद्युम्न और विनुरति, जो सौतेले माता और पुत्र होते हैं, उनके प्रेम संबंध को नैतिक और नए युग के लिए सूर्यमुख के समान बताता है, "वह प्रद्युम्न भविष्य है। वह नया है। सूर्यमुख है वह। उसने इस अंधकार में प्रेम का एक नया मनवंतर शुरू किया है। इस संबंध को तुम्हें नये अर्थ और संस्कार में देखना होगा।"[17]

इस प्रकार मिथकीय महाभारतोत्तर कथानक और पात्रों के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर भारतीय आधुनिक सामाजिक, पारिवारिक विघटन और विषमताओं को नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने चित्रित करने का प्रयत्न किया है। नाटक के सभी पात्र किसी-न-किसी के प्रतीक रूप में चित्रित किए गए हैं, जैसे कृष्ण नाटक में अतीत का प्रतीक हैं। वर्तमान का प्रतीक साम्ब है। भविष्य का प्रतीक प्रद्युम्न है। आधुनिक सत्ता का लालची विभ्रु है। कृष्ण रूढ़ियों के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किए गए हैं, जिसके अंधानुकरण के परिणामस्वरूप अशांति फैल जाती है। विनुरति को अंतरात्मा के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही वह आधुनिक नारी की भी प्रतीक है, जो किसी भी सामाजिक बंधन को नहीं मानती, "यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मेरा पति वही होगा, जो मेरा प्रियतम है।"[18] ईर्ष्या और बाधा के प्रतीक के रूप में रुक्मिणी है, जो साम्ब, वेनु तथा प्रद्युम्न के मध्य संशय पैदा करती है। मृत परंपरा का प्रतीक है- अर्जुन। इस प्रकार नाटक के सभी पात्र प्रतीकों के रूप में उभरकर आते हैं जो परंपरा और आधुनिकता की टकराहट को चित्रित तो करते ही हैं साथ ही इससे उत्पन्न सामाजिक, पारिवारिक विघटन और विषमताओं को भी प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। साथ ही आज के युवा के व्यक्तित्व में द्वंद्व, कुंठा, निराशा, विघटन, संघर्ष, एवं अनास्था आदि को भी चित्रित किया गया है।

2.4 एक और द्रोणाचार्य

'एक और द्रोणाचार्य' शंकर शेष कृत एक ऐसा नाटक है, जिसमें आधुनिक मनुष्य की विडंबना, व्यक्तिगत संघर्ष, सामाजिक स्थिति आदि को पौराणिक और आधुनिक दो समानांतर कथाओं के माध्यम से चित्रित किया गया है। नाटक के कथानक पर दृष्टि डालें तो यह शिक्षा जगत में व्याप्त सुविधाभोगी लोगों के भ्रष्टाचार तथा एक मध्यवर्गीय परिवार, जो इस शिक्षा जगत से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है, उसकी विसंगति को चित्रित करता है। कथानक महाभारत के द्रोणाचार्य के जीवन, उससे जुड़ी घटनाओं और आज के आधुनिक समाज में शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षकों के हालात में जो समानता दिखती है, उसको आधार बनाकर गढ़ा गया है। एक पौराणिक कथा में द्रोणाचार्य के आचार्य के रूप में परिवार के आर्थिक संकट, व्यवस्था और कर्त्तव्यनिष्ठा के मध्य उनका द्वंद्व और फिर व्यवस्था के साथ समझौता दिखाया गया है और दूसरी कथा आधुनिक संदर्भो में अरविंद का एक शिक्षक के रूप में उसके आदर्श, कर्त्तव्य, शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचारियों के राजनीतिक जाल में फंसकर उसके समझौते को दिखाया गया है। दोनों ही कथाओं में एक साम्य दिखता है, जो वास्तविक और स्वाभाविक लगता है। द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी अपने घर की दरिद्रता से खिन्न पौराणिक कथा वाले प्रसंग में द्रोणाचार्य को कोसती रहती है। अरविंद की पत्नी लीला इस आधुनिक कथा में मध्यवर्गीय परिवार की जरूरतों से अवगत नाटक के प्रथम दृश्य में दिखती है, किंतु उसे कोसते हुए, डांटते और झगड़ते हुए देखा जा सकता है, "और राशन कार्ड बन गया ? नहीं बना न ? गए भी थे? परवाह किसको है ! माँ का आपरेशन कब तय हुआ है ? इसका मतलब अस्पताल नहीं गए। अकेले कहाँ-कहाँ मरूंगी? बोलते क्यों नहीं कुछ ? क्या हो गया तुम्हें ?"[19] दूसरी ओर कृपी भी अपने परिवार की आर्थिक तंगी और दरिद्रता से परेशान द्रोणाचार्य को परिवार की जरूरतों और सच्चाई से अवगत कराती है और द्रोणाचार्य से कई तरह के प्रश्न करती है तथा उन्हें घर के हालात के लिए जिम्मेदार ठहराती है क्योंकि आचार्यत्व में व्यस्त द्रोणाचार्य ने अपने घर और उनकी जरूरतों को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया था। नाटक में कृपी द्रोणाचार्य से कहती है, "कृपी: विश्वास क्यों होगा।

कभी अपने लड़के की हड्डियाँ गिनी तुमने ? भिखमंगे का लड़का कहाता है तुम्हारा बेटा। मुझसे पूछो, कैसे जुटाती हूँ दो जून की रोटी।

द्रोणाचार्य: इतना नारकीय जीवन।

कृपी: नरक बनाया किसने ? मैंने या तुमने ? बोलते क्यों नहीं ? कहा मर गई अकड़ तुम्हारी ? होंगे बड़े आचार्य- लेकिन उससे अन्न नहीं आ जाता कपड़े नहीं आ जाते।"[20]

नाटक में लीला आधुनिक पत्नी के रूप में चित्रित की गई है, जिसे जीवन के सभी सुख चाहिए, वह चाहे किसी भी शर्त में क्यों न हो। अरविंद अपने समाज के प्रति और शिक्षक होने के नाते अपना दायित्व और कर्त्तव्य का पालन करना चाहता है। इसीलिए वह सच को सच और झूठ को झूठ ही कहना चाहता है, किंतु हर बार लीला उसे सच का साथ देने के नुकसान बताती है और समय तथा अपनी जरूरतों के अनुसार कार्य करने को कहती है। इसके बाद भी वह सच का ही साथ देना चाहता है। शिक्षा-जगत में भ्रष्ट लोग बार-बार उस पर दवाब डालते हैं कि वह सच न बोले और झूठ का साथ दे तथा अपना निर्णय बदल दे। अरविंद हर बार यह तय करता है कि वह अपना निर्णय नहीं बदलेगा और सच का ही साथ देगा, किंतु भ्रष्ट समाज उसकी निजी जिंदगी के आस-पास कई ऐसी दिक्कतें पैदा कर देता है कि वह हर बार आखिर में अपना निर्णय बदल देता है। चंदू जो कि अरविंद के कॉलेज का ही एक छात्र है और नकल के झूठे आरोप में उस पर कार्यवाही होती है। चंदू यह जानता है कि शायद प्रोफेसर अरविंद उसका साथ दें और सच को सामने लाएं। अरविंद और चंदू के संवाद से बोध होता है कि अरविंद का व्यक्तित्व किस प्रकार कर्त्तव्यनिष्ठ है, किंतु उसके आगे किस-किस तरह की परिस्थितियां खड़ी की जाती हैं, ताकि वह सच न बोले और अपने निर्णय बदल दे,

"अरविंद: पर तुम्हे शक क्यों होता कि मैं न्याय का साथ नहीं दूंगा ?

चंदू: क्योंकि लोग अक्सर ठीक मौके पर बदल जाते हैं।

अरविंद: क्या मुझे दूसरों की तरह...

चंदू: नो, सर ! वैसी बात नहीं है। पर आप पर दवाब डाला जाएगा। नौकरी से हटाने की धमकी दी जाएगी। जान से मारने का डर भी दिखाया जाए तो कोई अचरज नहीं।

अरविंद: मैं धमकियों से नहीं डरता।"[21]

इस प्रकार नाटककार ने अरविंद के चरित्र के माध्यम से आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में एक ऐसे शिक्षक को प्रस्तुत किया है, जो अपने 'प्रोफेशनल एथिक्स' के प्रति ईमानदार है। मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति हमेशा अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए परेशान रहता है, जैसे नाटक में लीला का अरविंद पर बनाया जाने वाला दबाव कि वह व्यवस्था के साथ और आज की जरूरतों के हिसाब से कार्य करे, जिससे घर की सारी जरूरतें कम समय में पूरी हो सकें। दूसरी ओर कॉलेज का भ्रष्ट तंत्र चाहता है कि अरविंद भी इस भ्रष्ट तंत्र का हिस्सा बनकर रहे, किंतु जब अरविंद उनका साथ नहीं देता, तब भ्रष्ट आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था उसे अपने राजनैतिक षड्यंत्रों में फंसाकर हर बार अपने पक्ष में कर लेती है, "अरविंद ऐसा अध्यापक है, जो 'प्रोफेशनल एथिक्स' के महत्त्व पर बल देता है, परंतु व्यवस्था द्वारा प्रस्तुत प्रलोभनों में उसकी चिंता पिघल जाती है और वह व्यवस्था का अंग बन जाता है।"[22]

नाटक में यदु अरविंद का ही मित्र है, जो उसके ही कॉलेज में शिक्षक है। यदु आधुनिक समाज का सुविधाभोगी व्यक्ति है, जिसे कर्त्तव्य और ईमानदारी जैसे सकारात्मक मूल्यों से कोई मतलब नहीं है। वह वाइस प्रिंसिपल बनना चाहता है, किंतु यह तब असंभव है, जब तक अरविंद प्रिंसिपल बनता है। इसीलिए वह भी अरविंद को हमेशा इस बात के लिए प्रेरित करता रहता है, जिससे वह भ्रष्ट शिक्षा तंत्र के खिलाफ न जाए और अपने हित और फायदे की दृष्टि से निर्णय ले, जिससे उसे भी कार्यस्थल पर लाभ हो, "तो जाओ, प्रिंसिपल बन जाओ। मेरा वाइस प्रिंसिपली के लिए रास्ता बनाओ। तुम प्रेसिडेंट का साथ दोगे तो वह भी तुम्हारा साथ देगा। रही चंदू और उसके साथियों की बात, प्रेसिडेंट उनसे खुद निबट लेगा।"[23] आधुनिक कथा में चंदू के साथ अरविंद न्याय नहीं करता। सारी सच्चाई

जानते हुए कि नकल उसने नहीं की, बल्कि नकल प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार ने की है। वह चंदू से यह वादा करके कि वह सच कहने से पीछे नहीं हटेगा। अंततः वह दबाव में आकर सच से मुकर जाता है, जिसकी सजा चंदू को भुगतनी पड़ती है। एक छात्र, जिसे अपने शिक्षक पर भरोसा होता है, वह टूट जाता है। अरविंद के छल करने से चंदू की जिंदगी बर्बाद हो जाती है। पौराणिक कथा में भी द्रोणाचार्य एकलव्य के साथ छल करते हैं। जब वह एकलव्य की अद्भुत धनुर्विद्या देखते हैं और यह जान लेते हैं कि वह अर्जुन से भी श्रेष्ठ धनुर्धर है, तब वह एकलव्य से गुरु दक्षिणा में एकलव्य के दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लेते हैं,

"एकलव्य: क्या मेरी गुरु-दक्षिणा भी स्वीकार नहीं ?

द्रोणाचार्य: क्यों नहीं, क्यों नहीं ! अब तुम जिद करते हो तो...लेकिन तुम दे भी सकोगे ?

एकलव्य: आप मांगिए तो।

द्रोणाचार्य: मेरी गुरु-दक्षिणा तुम्हे बहुत दुःख देगी।

एकलव्य: प्राणों से अधिक तो नहीं लेगी।

द्रोणाचार्य: तो सुनो, मुझे तुम्हारे दाहिने हाथ का अंगूठा चाहिए।"[23]

इस प्रकार द्रोणाचार्य और अरविंद दोनों ही पात्रों में एक प्रकार के व्यक्तित्व का दर्शन होता है। द्रोणाचार्य एकलव्य के साथ छल करता है ताकि एक गुरु के रूप में उसकी अपूर्णता छिपी रहे साथ ही भविष्य में अर्जुन ही सदा श्रेष्ठ धनुर्धर बना रहे और लोग इतिहास में अर्जुन का ही नाम श्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में जानें दूसरी ओर अरविंद भी चंदू के साथ छल करता है, अनुराधा का भी साथ न देकर अंततः उसके विश्वास को खंडित करता है। इस प्रकार अरविंद को भी नाटक में समझौतावादी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है, जिसका व्यक्तित्व द्रोणाचार्य से मिलता जुलता है। इस संदर्भ में विमलेन्दु जो इस नाटक में मृत चित्रित किया गया है, जिसकी आत्मा बार-बार अरविंद के सामने

आती है और उसे न्याय, कर्तव्य, निष्ठा इन सबसे दूर रहने को कहती है और याद दिलाती है कि किस प्रकार वह भी एक निष्ठावान और अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार था, किंतु इससे उसे मिला क्या ? उसकी हत्या कर दी गई। उसका परिवार, पत्नी दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। अतः वह भी इन भ्रष्ट तंत्रों के साथ में मिलकर ही कार्य करे तभी उसका कल्याण है। नाटक में कई स्थानों पर विमलेन्दु अरविंद से यह एहसास दिलाता है कि वह भी उसके नाटक के द्रोणाचार्य के समान समझौतावादी है। अंततः विमलेन्दु अरविंद को कहता भी है, "विमलेन्दु : तू द्रोणाचार्य है। व्यवस्था और सत्ता के कोड़ो से पिटा हुआ द्रोणाचार्य-इतिहास की धार में लकड़ी की ठूंठ की तरह बहता हुआ, वर्तमान के कागार से लगा हुआ-सड़ा- गला द्रोणाचार्य। व्यवस्था के लाईटहाउस से अपनी दिशा मांगने वाले टूटे जहाज-सा द्रोणाचार्य।

अरविंद: मैं द्रोणाचार्य नहीं, अरविंद हूँ-प्रोफेसर अरविंद।

विमलेन्दु : बकवास ! तू द्रोणाचार्य है। कौरवों की भाषा बोलने वाला, युद्ध में भी उनका साथ देने वाला। तू किस बात का प्रोफेसर है ? तू द्रोणाचार्य है।"[24]

इस प्रकार शंकर शेष द्वारा रचित नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' मुख्यतः समस्या से प्रारम्भ होकर समस्या पर ही जाकर समाप्त हो जाता है। किंतु यह नाटक आज की आधुनिक सामाजिक, शैक्षणिक व्यवस्था में फैलती सड़ांध की ओर इशारा करता है। जहाँ अरविंद जैसा एक और द्रोणाचार्य पैदा होता है या समाज के द्वारा बना दिया जाता है। इस नाटक में आज के आधुनिक मानव की आंतरिक यंत्रणा, मानवीय नियतियों आदि को दो साम्य प्रतीत होती पौराणिक और आधुनिक नाट्य कथा के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

2.5 शुतुरमुर्ग

सातवें दशक की इसी कड़ी में एक महत्त्वपूर्ण नाटक ज्ञानदेव अग्निहोत्री द्वारा रचित 'शुतुरमुर्ग' है। यह नाटक भी प्रतीकों के माध्यम से आधुनिक समाज की भ्रष्ट सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था

को चित्रित करता है। नाटककार ने तत्कालीन ख़राब राजनैतिक स्थितियों को इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। देश में झूठी योजनाएं, झूठे वादे, अकर्मण्य समितियों के गठन जैसी स्थितियों, जिसके फलस्वरूप देश में सिर्फ अराजकता, गरीबी और शोषण बढ़ता है, को दिखाने का प्रयास किया गया है, जो उनके समकालीन और आज के राजनैतिक हालातों की भी एक कड़वी सच्चाई बन चुकी है।

इस नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धि इसकी प्रतीकात्मकता है। शुतुरमुर्ग भी इस नाटक में प्रतीक है उन सत्ताधारी राजनेताओं का, जो जनता द्वारा निर्वाचित होने के बाद अपने लिए तमाम सुख-सम्पत्ति जुटाने में लग जाते हैं, किंतु जनता जब अपने लिए कुछ मांग करती है तो ये सत्ताधारी ऐसे मुंह छिपा लेते हैं, जैसे किसी खतरे को सामने देखकर शुतुरमुर्ग अपना मुंह रेत में छिपा लेता है। नाटक में सत्ताधारियों का जो प्रतीक है शुतुरमुर्ग उसके संदर्भ में 'विरोधीलाल' जो कि इस नाटक का एक प्रमुख पात्र है कहता है, "शुतुरमुर्ग ! आह ! कितना प्यारा पक्षी है ! जब नग्न सत्य उसे चारों ओर से घेर लेते हैं और वह भाग नहीं पाता तो आँखों समेत वह अपना चोंच रेत में डुबो देता है और पलायन की उस संपूर्ण अनुभूति में यह कल्पना करता है कि उसे कोई नहीं देख रहा है, कोई नहीं जान रहा है, कोई नहीं समझ रहा है और वह सुरक्षित है !"[25] कहने का अर्थ यह है कि ऐसे ही ये सत्ताधारी अपना मुंह जनता की मांगों से छिपा लेते हैं। आज वर्षो बाद भी इस नाटक की प्रासंगिकता बनी हुई है, क्योंकि इन सत्ताधारियों की नीतियों और सोच में कोई विशेष अंतर नहीं आया है वे आज भी शुतुरमुर्ग के समान ही जनता की जरूरतों और मांगों पर प्रतिक्रिया देते हैं।

नाटककार ने इस नाटक में प्रतीकों के साथ-साथ व्यंग्य के माध्यम से भी राजनैतिक अव्यवस्था पर प्रहार किया है। सत्ताधारियों की कई ऐसी नीतियां, ऐसे कार्य एवं योजनाएँ होती हैं जो कि सामाजिक हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं लेकिन वह कार्य और वह योजनाएं उन सत्ताधारियों के लिए कामनाओं का द्योतक होती है। जैसे नाटक में भी राजा की यह कामना होती है कि वह अपने शुतुरनगरी में शुतुरमुर्ग की एक स्वर्ण प्रतिमा स्थापित करे। उसकी यह कामना राज्य के सभी कार्यों

और जनता के हित से श्रेष्ठ है। उसके इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्यभर से चंदा लिया जाता है, वास्तुशिल्पकारों को बुलाया जाता है। डॉ. हरीश नवल अपनी पुस्तक 'हिंदी नाटक : तीन दशक में लिखते हैं, "राजा के रूप में कई वर्षों से वह शुतुरमुर्ग की प्रतिमा के ऊपर स्वर्ण-छत्र लगवा रहा है। स्वर्ण-छत्र की यह समस्या देश की सभी समस्याओं से उपर है।"[26]

इस प्रकार यह नाटक दायित्वहीन, सुविधाभोगी सत्ताधारियों के चरित्र को ही चित्रित करता है। इस नाटक में जिस शुतुरनगरी का चित्रण किया गया है वह कोई भी राज्य देश हो सकता है, जहाँ गरीबी, भुखमरी और अकाल पड़ा हुआ हो। जहाँ राजा अपनी योजनाओं पर स्वर्णिम कामनाओं की चादर डालने में अपने राज्य के जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है और अपने दायित्व से सदा विमुख रहता है। अतः नाटक के राज्य, राजा, समाज और सभी अन्य पात्र आज की आधुनिक सत्ता, सत्ताधारियों, समाज और समाज के लोगों के प्रतीक हैं। नाटक के ये प्रतीक और नाटक के संवादों में व्यंग्य आधुनिक सत्ताधारियों, समाज और उनके चरित्र को ही चित्रित करते हैं। नाटक के पात्रों के नामकरण से भी आधुनिकता का स्वतः ही बोध हो जाता है। डॉ मदान लिखते हैं, "आधुनिकता का बोध नगर बोध से हुआ है, खोखली शुतुर-नगरी से। यह आधुनिक-बोध व्यंग्य और विसंगति के रूप में नाटक के संवादों, स्थितियों और स्वयं पात्रों के नामकरण से स्पष्ट है।"[27]

इस राज्य का भी यही हाल है जहाँ भूख, भय, अकाल, अनास्था चारों ओर फैली है। नाटक के संदर्भ में नाटककार ने स्वय कहा है कि इस नाटक में जो राजा है वह खुद शुतुरमुर्ग नहीं है, बल्कि वह समाज के चरित्र और प्रवृत्ति को जानता है। दरअसल शुतुरमुर्ग के लक्षण और प्रवृत्तियां समाज में लोगों के भीतर हैं जो अपने दायित्व का निर्वाह करने से बचते हैं। राजा उसके इस स्वभाव और प्रकृति को अच्छे से जानता है। अतः अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह उनका इस्तेमाल करता है। तभी वह खुद को सचेतन मुर्ग कहकर संबोधित करता है। नाटककार का इन प्रतीकों के संदर्भ में कहना है, "मेरे नाटक का राजा शुतुर व्यवहार से पीड़ित नहीं है। वह स्वयं शुतुरमुर्ग नहीं है, पर उसे मानव-

स्वभाव में दूर तक धँसी शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति का ज्ञान है। इसी ज्ञान को वह अपने स्वार्थ के लिए मोड़ लेता है। तभी तो वह अपने आपको सचेतन मुर्ग कहता है।"[28]

नाटक में राजा, भाषणमंत्री, रक्षामंत्री, और विकासमंत्री सभी की निकृष्टता देखी जा सकती है। इस रूप में अंततः राजा और उनके मंत्रीपरिषद इस नाटक में शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और विरोधीलाल, मामूलिराम, और मरता हुआ मनुष्य आधुनिक समाज के शोषित वर्ग का ही प्रतीक हैं।

इस प्रकार 'शुतुरमुर्ग' नाटक की यह उपलब्धि कही जा सकती है कि यह आज के आधुनिक मानव की प्रवृत्तियों को, जो शुतुरमुर्ग के समान ही स्वार्थ लोलुप हो चुकी हैं, जो कभी किसी से जुड़ते भी हैं तो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए, ऐसे लोगों के मनोविज्ञान को बड़ी कुशलता से प्रतीकों और व्यंग्यों के माध्यम से चित्रित करने में नाटककार ज्ञानदेव अग्निहोत्री सफल रहे हैं।

2.6 बकरी

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाम हिंदी की नई कविता के प्रमुख कवि के रूप में स्थापित है। एक नाटककार के रूप में 'बकरी' उनकी सर्वप्रथम और श्रेष्ठ नाट्य रचना है। स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक व्यंग्य नाटकों में 'बकरी' सफल नाटक है, जोकि अपने समकालीन राजनैतिक हालात को ही बयां नहीं करता बल्कि आज के राजनैतिक परिवेश और परिस्थितियों को बड़े व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित भी करता है। 'बकरी' नाटक स्वातन्त्र्योत्तर विघटित राजनैतिक हालातों और साधारण जनता की खीझ को प्रकट करता है। यह नाटक साधारण जनता के अन्याय और अत्याचार के प्रति व्यंग्य के माध्यम से प्रतिरोध की चेतना का उदाहरण है। इस संदर्भ में डॉ. हरीश नवल लिखते हैं, "यह नाटक पूरी व्यवस्था के विरुद्ध कटाक्ष के साथ-साथ एक रचनात्मक विद्रोह की आहट संजोये हुए है।"[29]

नाटक के कथानक पर दृष्टि डालें तो नाटककार ने अपनी समकालीन शोषित जनता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। जनता, सत्ता तथा व्यवस्था के अंधविश्वासों के मध्य कथा एक स्त्री से जुड़ी है, जिसकी बकरी को तीन लोग गांधी जी की बकरी बोल कर, हड़प लेते हैं। स्त्री इसका विरोध

करती है तो उसे भारतीय सुरक्षा अधिनियम के तहत गिरफ्तार कर लिया जाता है। बकरी यहाँ प्रतीक है उस जनता का जिसके साथ यह शोषक वर्ग छल करता है। बकरी का प्रतीकार्थ प्रतिष्ठा और धनदायिनी भी है। यह अपने मालिक की बुद्धि को ही चर जाती है। तभी इस बकरी का मालिक बकरी के नाम से तमाम संस्थाओं की स्थापना करता है, जैसे बकरी सेवा मंडल, बकरी संस्था, बकरी सेवा संघ आदि। संस्थापकों का इन संस्थाओं से लाभ कमाना ही उद्देश्य होता है, "बकरी (गांधी जी की बकरी) के बल से 'बकरी संस्थान, बकरी सेवा संघ, आदि खोलकर गरीब, बाढ़, अकाल आदि पीड़ित ग्रामीणों से ये लोग धन वसूल करते हैं। यही लोग बल और धन के प्रयोग से चुनाव जीतकर प्रजातंत्र को खरीद लेते हैं।"[30] नाटक के इस अंश से बोध होता है कि नाटककार की समकालीन राजनैतिक स्थितियों से आज की आधुनिक राजनैतिक और सामाजिक स्थितियां कितना साम्य रखती हैं। आज भी तमाम संस्थाओं के नाम गाँधी और न जाने कितने ऐतिहासिक पुरुषों के नाम पर रखे जाते हैं, जोकि नाटक की इस बकरी के ही समान प्रतीत होते हैं, इन संस्थानों से अपने राजनैतिक और निजी लाभ हेतु ये सत्ताधारी न जाने कितने पैसे बनाते हैं। नाटक में नवचेतना का प्रतीक एक युवक को चित्रित किया गया है। वह नाटक के अंत में इंकलाब का नारा भी देता है। देश में युवाओं ने इन नारों से इन शोषक तंत्रों के विरुद्ध सभी को लामबद्ध किया है। शोषकों का प्रतीक और प्रतिनिधित्व इस नाटक में जो पात्र कर रहे हैं, वह हैं- कर्मवीर, दुर्जनसिंह, सत्यवीर। अधिकारी, पूंजीपति आदि नाटक में सिपाही के साथ ही मिलकर किस प्रकार देश की जनता का वर्षो से दोहन और शोषण कर रहे हैं इसका प्रतीकों और व्यंग्यों के माध्यम से बड़ा सटीक चित्रण किया गया है। तभी इन प्रतीकों और व्यंग्यों के माध्यम से नाटक के मूल भाव को एक पाठक या दर्शक के रूप में बड़ी सरलता से समझा जा सकता है।

नाटक में गीतों का भी विशेष महत्त्व है। गीतों के माध्यम से ही व्यंग्य प्रभावशाली बन पड़े हैं। नाटक का प्रारंभ नट-नटी के गीतों से ही होता है, लेकिन नाटक में नट को एक विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है। जब मंडली के सभी गायक गायन प्रारंभ करते हैं तो नट चुप हो जाता है और नटी के

आँख दिखाने पर गायन करता है, किंतु वह गायन के बोल को राजनैतिक संदर्भों में व्यंग्य रूप में गाता है, "नटी के गायन 'सदा भवानी दाहिने सम्मुख रहें गणेश। पांच देव रक्षा करें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इस पर नट का गायन 'पांच देव सम पांच दल, लगी ठौंग की रेस। जिनके कारण हो गया आज परदेस'। आगे चलकर नट का विद्रोही मुद्रा में गाना 'संकट मोचू। बना दे हमें घोंचू। सर न नोंचू न उनका मुंह नोंचू। हे संकट मोचू।"[31] इस प्रकार नाटक में नट भी उस आधुनिक कलाकार का प्रतीक कहा जा सकता है जो अपनी गायन कला से शोषकों का विद्रोह करते हैं।

नाटक में गांधी जी की बकरी कहकर नाटककार ने शोषित जनता का जो प्रतीक प्रस्तुत किया है। वह मूलतः गांधी जी की गांधीवादी विचारधारा का दुरुपयोग और उसके अनुचित प्रयोग की वेदना को ही इंगित करता है। गांधी या कई ऐसे स्वतंत्रता सेनानी के नाम पर या किसी युग पुरुष के नाम पर वर्षों से जनता को गुमराह कर ठगी करना, इन राजनैतिक और शोषक वर्ग के द्वारा किया जाता रहा है। नाटक में दुर्जन सिंह नामक पात्र, जो शोषक वर्ग का प्रतीक है वह कहता है कि गांधी जी की बकरी के दर्शन हेतु खाली न आएं। यह नाटककार का व्यंग्य है उन धूर्त ठगों के ऊपर जो इस तरह की झूठी बातों को फैलाकर या जनता को गुमराह करने का काम करते हैं। जिससे वह अधिक से अधिक जनता को लूटकर धन कमा सकें। नाटक में सिपाही द्वारा 'डंडा ऊँचा रहे हमारा' का यह गीत गाना, आज के आधुनिक समय में कानून के लोगों द्वारा डंडे की जोर-जबरदस्ती की नीति को चित्रित करता है, "डंडा ऊँचा रहे हमारा। सबसे प्यारा सबसे न्यारा। सुख-सुविधा बरसाने वाला। शक्ति सुधा बरसाने वाला। प्रभुता सत्ता का रखवारा।"[32]

इस प्रकार यह नाटक जहाँ अपने समकालीन राजनैतिक और सामाजिक हालतों को चित्रित करने में सफल था वैसे ही इसकी प्रासंगिकता आज भी है, नाटक आधुनिक समय के भी राजनैतिक और सामाजिक हालतों को चित्रित करने में सफल है। बकरी इस नाटक में निरीह जनता का प्रतीक है। जिसका शोषण कल भी हो रहा था और आज भी कमोबेश ऐसा ही प्रतीत होता है। नाटक अपने प्रतीकों और व्यंग्य के माध्यम से गरीब, शोषित जनता के दर्द को कहने में सफल है। इस शोषण से

उसकी मुक्ति की कामना पूर्ण नहीं होती है और वह बकरी के समान ही अंतत: दुही जाती है। प्रतीकों और व्यग्यों के माध्यम से नाटक में आधुनिकता बोध हैं , अत: आज के भी राजनैतिक और सामाजिक हालातों को व्याखायित करने में यह एक सार्थक नाटक है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपने इस नाटक 'बकरी' की भूमिका में जो लिखते हैं उससे नाटक का सही और सार्थक अर्थ-बोध हो जाता है, "बकरी गरीब और नरीह जनता का प्रतीक है। नाटक का परिवेश है- जनता के मध्य गरीबी, अन्याय और शोषण, परंतु उसकी मुक्ति-कामना एक अनुभूति, प्रतिक्रिया बनकर रह जाती है। जनता 'बकरी' के समान दुही जाती है।"[33]

2.7 योर्स फेथफुली

मुद्राराक्षस के नाटक पाश्चात्य नाट्य साहित्य के अब्सर्ड नाटक अर्थात् असंगत नाटक से प्रभावित माने जाते हैं। हिंदी नाट्य साहित्य में इसकी संख्या बहुत अधिक नहीं दिखती है। किंतु मुद्राराक्षस के कुछ नाटक अब्सर्ड नाटक की श्रेणी में रखे जाते हैं। 'तिलचट्टा', 'तेंदुआ', 'योर्स फेथफुली', 'मरजीवा' आदि कुछ इस श्रेणी के महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। मुद्राराक्षस के नाटकों में भी शोषण व्यवस्था द्वारा जनता का शोषण और उस शोषण से उत्पन्न सामाजिक विघटन तथा जीवन मूल्यों के पतन के विविध पक्षों को ही उद्घाटित किया गया है। मुद्राराक्षस के नाटक 'योर्स फेथफुली' के पात्रों को देखें तो ये सभी पात्र शोषण-तंत्र के प्रति निष्ठावान दिखते हैं जो कि भ्रष्टाचार और शोषण में लिप्त हैं। नाटक में चित्रित पात्र जैस क्लर्क, चपरासी, पुलिस आदि सभी अपने-अपने कार्य वर्ग से जुड़ी मनोवृत्ति के ही संवाहक हैं, जो कि भ्रष्ट शोषण-तंत्र का ही हिस्सा हैं। सभी पात्र भ्रष्ट तंत्र को जीवित रखने में सहयोगी हैं। अपने निजी जीवन में इन तमाम विसंगतियों को झेलते हैं। किंतु इसके बाद भी ये इस भ्रष्ट व्यवस्था तंत्र से जुड़े रहते हैं। आज के समय में भी राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था तंत्र, सब में भ्रष्टाचार व्याप्त है। आज निजी जीवन में कोई भी व्यक्ति कितनी ही विसंगतियों को क्यों न झेल रहा हो लेकिन वह भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस भ्रष्ट व्यवस्था तन्त्र का हिस्सा अवश्य ही बन जाता है और इस व्यवस्था को पोषित करता है। नाटक के कई अंशों में इस शोषक व्यवस्था के

शोषण का दर्शन होता है और उसके मध्य लोगों की उलझी हुई जिंदगी को देखा जा सकता है, जैसे नाटक में उस अधिकारी के चरित्र का भोगवादी व्यवहार जिसमें वह अपने दफ्तर की स्टेनो कंचनरूपा का शारीरिक शोषण करता है। कंचनरूपा का पूरा व्यक्तित्व इस दफ्तरी तंत्र में पिसकर रह जाता है, "इसका प्रत्यक्ष रूप इस नाटक के उस अधिकारी के चारित्रिक स्खलन में देखा जा सकता है, जो अपने कार्यालय की स्टेनो कंचनरूपा की मर्यादा का अपहरण करता है और 'कंचन' का संपूर्ण अस्तित्व भ्रष्ट शासन के अंतर्गत सिमटकर चला आता है। नाटककार एक भयानक सत्य के संदर्भ में जीवन की विसंगतियों को झेलते हुए पात्रों की मानसिकता और परिस्थितियों को झेलने की बाध्यता का अंकन करता है।"[34] मुद्राराक्षस का यह नाटक 'योर्स फेथफुली' अपने नाट्य शीर्षक को सार्थक करता है। जिसमें फेथ अर्थात् विश्वास जैसे शब्द बोधात्मक है। भ्रष्ट व्यवस्था तन्त्र के प्रति भ्रष्टाचारियों का फेथ अर्थात् विश्वास, जिसमें आस्था रखकर ही हमारा निजी विकास हो सकता है।

दरअसल समकालीन आधुनिक हिंदी नाटकों में वस्तु-विश्लेषण के संदर्भों में देखें तो पात्रों के नियोजन का मुख्य उद्देश्य उनकी प्रवृत्तियों को उद्धरित करना है। समकालीन आधुनिक हिंदी नाट्य रचना मुख्यतः उन परिस्थितियों को उद्घाटित करती है, जिसमें आज का मनुष्य खंडित है। साथ ही जीवन की विसंगतियों को झेलते हुए आज वह अवशिष्ट प्रतीत होने लगा है।

मुद्राराक्षस के नाटकों के संदर्भ में कहे तो उनका यह नाटक 'योर्स फेथफुली' या अन्य जैसे 'तिलचट्टा', 'तेंदुआ', 'मरजीवा' आदि नाटक आधुनिक मानवीय त्रासदी को ही चित्रित करते हैं जो पाश्चत्य संस्कृति से प्रभावित हो रहे हैं। जिसमें मानवीय यौन विकृतियाँ और खंडित जीवन है, साथ ही राजनैतिक, सामाजिक विसंगतियों को भी चित्रित करता है। किंतु इनके नाटकों में आधुनिकता बोध होते हुए भी नाट्य संरचना में कई नाट्य स्थलों पर स्वाभाविकता का अभाव है जो कि नाटकीय संभावनाओं के प्रति प्रश्न खड़े करता है।

2.8 कथा एक कंस की

नाटककार दयाप्रकाश सिन्हा आज के प्रसिद्ध रंगकर्मी, नाटककार और निर्देशक भी हैं। उनका नाटक 'कथा एक कंस की' हिंदी आधुनिक नाटकों में एक रंगमंच पर सफल और चर्चित नाटक है। जिसका सवर्प्रथम मंचन 1975 ई. लखनऊ में स्वयं अपने निर्देशन में किया था। इसके कथानक और पात्रों की बात करें तो मिथकीय पौराणिक पात्र 'कंस' के जीवन से जुड़ी कथा है। नाटककार का उद्देश्य पौराणिक कथा में मिथकीय प्रयोगकर आधुनिक युगीन मनुष्य की प्रवृत्ति को चित्रित करना है। जिसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार किसी व्यक्ति को सत्ता का शीर्षपद प्राप्त होते ही वह महत्त्वाकांक्षी और कई बार निरंकुश शासक बन जाता है। नाटककार 'कंस' को इस नाटक में एक ऐसे निरंकुश राजा के रूप में प्रस्तुत करता है जो आधुनिक व्यक्ति, युग विशेष और उससे भी बढ़कर एक संस्था के रूप में प्रस्तुत होता हैं। नाटक में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण समष्टि और व्यष्टि दोनों ही धरातलों पर होता है। कंस की मनःस्थिति का समष्टि विश्लेषण हुआ है और निष्कर्ष स्वरूप उन कारणों को जानने का प्रयत्न किया गया है जिन कारणों से वह न केवल निरंकुशता की प्रेरणा प्राप्त करता है बल्कि इसके लिए वह बाध्य भी होता है। इसके पीछे के कारणों का बोध इस प्रकार होता है कि जो प्रवृत्ति नाटक में कंस के बाल्यकाल में होती है वह वयस्क होने पर बदल जाती है अर्थात् बाल्यकाल में कंस के चरित्र में विनम्रता, सद्गुण और सद्भाव होता है वहीं बाद में उसके चरित्र में क्रूरता और निरंकुशता आ जाती है, "संपूर्ण कथा कंस के इर्द-गिर्द घूमती है। कंस का द्वंद्व सर्वोपरि है। बचपन में कंस का आचरण सद्गुण और सद्भाव संपन्न था। बाद में उसका चरित्र स्वेच्छाचारी दिखाया गया है।"[35] कंस के अंतर्मन का जो बिम्ब उभरता है वह मनोविज्ञान की सूक्ष्म रेखाओं के माध्यम से उभरता है, और जो एक सर्वकालिक सत्य प्रकट होता है वह यह है कि सत्ता के शीर्ष पर हर कोई नहीं बैठ सकता अतः एक ही व्यक्ति बैठ सकता है। नाटक में इस तथ्य बोध हेतु प्रलंब और प्रद्योत नामक पात्रों की कल्पना की गई है। नाटककार ने इस तथ्य को दिखाने का प्रयत्न किया है कि यह कथा कंस को केंद्र में रखकर अवश्य लिखी गयी है लेकिन यह कथा कंस के

अतिरिक्त उन सभी निरंकुश शासकों की भी है, जो इतिहास में समय-समय पर आते-जाते हैं। नाटक का आरम्भ उस स्थान से होता है जहाँ कंस अनिद्रा से व्याकुल रहता है और उस अवस्था में वह दुर्ग के अटारियों पर इधर से उधर कंगूरे तक बेचैन अकेला घूमता रहता है। नींद आने पर वह स्वप्न देखता है कि किसी के दो विकराल हाथों ने उसकी ग्रीवा को पकड़ रखा है। वह जोर से चिल्लाता है, "कहाँ से प्रारंभ होती है यह कथा, एक साधारण मनुष्य की असाधारण महत्त्वकांक्षा की कथा, एक साधारण मनुष्य के भगवान बनने की कथा, एक धड़कते लहू के ठंडे होकर धीरे-धीरे पत्थर से जमने की कथा, कहाँ से प्रारंभ होती है यह कथा।"[36]

कंस के स्मृति पटल पर पूर्व में बीती सभी घटनाएं कौंध जाती हैं। पुनः एक बार कंस अपने अतीत के जीवन को जीता है। नाटक में नन्द की कथा को नाटक में आश्रय मात्र के लिए रखा गया है। कंस सत्ता लोलुप एक शासक का प्रतीक है जो कि मगध के राजा जरासंध के राज्य विस्तार की इच्छा का माध्यम बनता है। दया प्रकाश सिन्हा ने नाटक की सार्थकता के संदर्भ में बताया है कि, कंस के चरित्र में उन्हें हिटलर का प्रतिबिम्ब दिखता है। एक ऐसे महत्वाकांक्षी विश्वविजय बनने की आकांक्षा रखने वाले शासक के शासन के उत्थान-पतन के साथ-साथ उसकी विक्षिप्त द्वंद्वात्मक अवस्था की भी, जहाँ अंततः खुद को अकेला ही पाता है, "कंस के चरित्र सृष्टि में आज के तानाशाह जैसे हिटलर की क्रूर महत्त्वाकांक्षा निहित है। स्वयं नाटककार ने कहा है कि उन्होंने इस नाटक के द्वारा एक निरंकुश शासक के उत्थान-पतन के अतिरिक्त उसकी महत्त्वाकांक्षाओं में निहित त्रासदी को पकड़ने की कोशिश की है।"[37] नाटककार ने कंस के माध्यम से एक व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति को भी चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि कैसे एक व्यक्ति की समय-समय पर प्रवृत्ति परिवर्तित हो सकती है। व्यक्ति की प्रवृत्ति किसी के प्रभाव, प्रेरणा या किसी परिस्थितिजन्य भी परिवर्तित हो सकती है। आधुनिक मानव की प्रवृत्ति भी आज संशयात्मक, संदिग्ध ही है। आज सामाजिक, राजनैतिक या व्यक्तिगत इन सभी संदर्भों में आधुनिक मानव की प्रवृत्ति संशयात्मक ही है। कंस की प्रवृत्ति इन सदर्भों में आधुनिक मानव की प्रवृत्ति का ही प्रतीक है। कंस की बाल्यकाल और वयस्क दोनों ही

समय की प्रवृत्तियों में बहुत अंतर है। बाल्यकाल में वह संगीत प्रेमी, भावुक, करुण, अहिंसात्मक होता है साथ ही स्वप्नदर्शी, फूल और गंध को महसूस करने वाला होता है, जिसे अपने पिता और बहन से बहुत प्रेम होता है। वासुदेव भी न केवल उसका संबंधी होता है बल्कि उससे मित्रवत संबंध भी होता है। किंतु बाद के समय में वयस्क होने पर अपने पिता उग्रसेन के जीवन बोध से प्रेरणा प्राप्त कर हिंसक प्रवृत्ति का हो जाता है। निरंतर अपनी सत्ता विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के परिणाम स्वरूप वह हिंसात्मक होता चला जाता है, किंतु साथ ही कंस का खुद का व्यक्तित्व भी उतना ही असुरक्षित और संत्रासग्रस्त हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह नाटक आज के आधुनिक व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया भी है और उसकी कथा भी है। नाटक के अंत में कंस के संवादों में उसके आत्मबोध का चित्रण होता है जहाँ वह अपने आप से प्रश्न करता है, "हर अत्याचार आत्म-मंत्रणा है, क्या हर हत्या आत्महत्या ?"[38]

अतः यह कहा जा सकता है कि सत्ता के शीर्ष पर बहुत जगह नहीं होती है, वहाँ कोई एक ही व्यक्ति खड़ा हो सकता है। ऐसे में यह सत्ता और सत्ता विस्तार की महत्वाकांक्षा इंसान को एकांकी जिंदगी की ओर ढकेल देती है, जहाँ वह भय और संत्रास से घिरा रहता है। कंस अपने व्यवहार में हर दृष्टि से एक आधुनिक व्यक्ति के समान ही प्रतीत होता है। आधुनिक मानव के ही समान कंस आंतरिक और बाह्य दोनों ही रूप में विभक्त है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिस मिथकीय चेतना का प्रयोग 'कथा एक कंस की' में किया गया है उसका संबंध आधुनिकता से भी जुड़ता है।

नाटक में अस्ति और स्वाति कंस की दो पत्नियाँ हैं। इसमें अस्ति का चरित्र और प्रवृत्ति स्वतंत्र व्यक्तित्व की है। इसीलिए नाटक में अस्ति का स्वतंत्र नारी अस्तित्व कंस के अंह से टकराता रहता है। यूं तो अस्ति कंस के प्रति एक समर्पित पत्नी है किंतु कंस, जिसके अन्दर अहं भरा हुआ है और सत्ता के भय से उत्पन्न संत्रास से वह अस्ति की हत्या कर देता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सत्ता का घमंड और उन्माद इंसान के अन्दर अहं को भर देता है और कोई भी अहंकारी सत्ताधारी किसी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं करता है, क्योंकि ऐसे स्वतंत्र व्यक्तित्व का

इंसान हमेशा ही सत्ताधारियों को चुनौतियां देता आया है। आधुनिक समाज में भी ऐसे तमाम सत्ताधारी समय-समय पर रहे हैं, जिनका सामना स्वतंत्र व्यक्तित्व के लोगों से होता रहा है। कंस भी नाटक में एक स्थल पर कहता है कि, "चाहे वह पत्नी हो, चाहे मित्र, चाहे बहन, उसे नष्ट होना ही है।"[39] इस प्रकार कंस किसी और के सत्य को नहीं स्वीकारता है। स्वयं द्वारा अनुभूत किया हुआ सत्य ही उसके लिए सर्वोपरि है। इसलिए वह आधुनिक मानव के उस चरित्र के निकट प्रतीत होता है जो संशयग्रस्त होता है।

इस प्रकार दयाप्रकाश सिन्हा कृत यह नाटक 'कथा एक कंस की' भी आधुनिक जीवन की त्रासदी को ही चित्रित करता है, जिसमें नाटककार ने पौराणिक मिथकीय कथा से आश्रय लेकर आधुनिक जीवन के रूप को प्रस्तुत किया है। कंस की प्रवृत्ति, शासक के रूप में सत्ता विस्तार की उसकी महत्त्वाकांक्षा, उसकी निरंकुशता, उसक सत्ता से उत्पन्न संत्रास आदि सभी आधुनिक मानव की भी नियति हैं। जिस तरह से बाह्य और आंतरिक रूप से कंस का अस्तित्व बंटा हुआ था। उसी प्रकार आज के आधुनिक मनुष्य का शरीर और आत्मा अर्थात् उसका आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व एक-सा नहीं रह गया है। तभी कंस और आज का आधुनिक व्यक्ति संशय में जीता है। जिसके कारण आज व्यक्ति एक दूसरे से अलग होता जा रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि नाटककार के कंस की निरंकुश प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने के पीछे उद्देश्य आधुनिक मानव के ही दोहरे व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों को उजागर करना है।

2.9 प्रजा ही रहने दो

गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' नाटक हिंदी नाट्य साहित्य में एक बहुचर्चित नाटक है। इस नाटक की कथा-वस्तु और पात्र-चयन अंधा-युग के ही समान है अर्थात् महाभारतकालीन पृष्ठभूमि जिसमें एक राज परिवार की एकछत्र शासन की इच्छा के परिणाम स्वरूप महाभारत का युद्ध होता है और उसका विनाशकारी परिणाम निकलकर सामने आता है। यह विनाश जनता की कुंठा,

निराशा, भटकाव दिशाहीनता तथा ऊब को ही जन्म देता है। आज आधुनिक युग में भी अपने राजनैतिक दल के विस्तार और व्यक्तिगत लाभ के लिए शासकों के व्यक्तित्त्व का पतन हो चुका है। धृतराष्ट्र के ही समान अंधा शासक और शासन समय-समय पर विद्यमान रहे हैं। जिससे ऊबकर जनता की भी शासकीय व्यवस्था के प्रति आस्था समाप्त हो चुकी है। नाटक के प्रथम दृश्य में ही धृतराष्ट्र के शासन के प्रति जनता का मोहभंग और अविश्वास प्रकट हो जाता है। राजाज्ञा की घोषणा से प्रथम दृश्य प्रारंभ होता है। जैसे ही उद्घोषक राजाज्ञा की घोषणा करना चाहता है और गोमुखा बजाने वाला गोमुखा बजाकर लोगों को रोकना चाहता है, किंतु घोषणा सुनने के लिए कोई होता ही नहीं है। जिसके बाद सेवक और उद्घोषक के बीच जो संवाद होता है उससे आधुनिक राजनीति के प्रति जनता का मोहभंग, उपहास, भय, आशंका, व्यंग्य और ऊब सब दिखता है। उद्घोषक और सेवक के बीच का संवाद दृष्ट्व्य है,

"उद्घोषक : तुम्हें मेरे प्रश्नों का उत्तर देना होगा। आज कुछ भी तो नहीं ..न त्योहार और न पर्व, फिर लोग कहाँ गये ? राजाज्ञाओं के प्रति इतनी उदासीनता। लगता है उनका समय आ गया है ! तुम हँसते हो। राजाज्ञा के संदर्भ में हँसना विद्रोह की गंध उत्पन्न करता है।

सेवक : जड़ता फैल रही है।

उद्घोषक : नहीं, जनता स्वार्थी है। स्वार्थ की बात ही सुनना चाहती है।

सेवक : उद्घोषक जी, मैं समझा नहीं, आप राजा की तरफ हैं या प्रजा की। लीजिये मैं गोमुखा फूंके देता हूँ।"[40]

इस प्रकार नाटक के प्रथम दृश्य में महाभारत की कथा और पात्रों में दर्शक या पाठक नहीं उलझता है। बल्कि आज की आधुनिक राजनीति के प्रति जनता के चुभते अनुभव और उनका सत्ता के प्रति उपहास, आशंका, व्यंग्य, भय आदि सीधे अर्थो में समझ आ जाता है। महाभारत के सभी पौराणिक पात्र एक व्यक्ति के स्थान पर प्रवृत्तियों के रूप में चित्रित किये गए हैं। नाटककार का मुख्य उद्देश्य

आधुनिक शासकों और जनता की प्रवृत्तियों को ही उजागर करना है। स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक शासन व्यवस्था जनता की जरूरतों उसकी तकलीफों की ओर से अपना मुख मोड़ लेती हैं, जिससे वह सत्ता, जनता को धृतराष्ट्र और गांधारी के समान ही प्रतीत होने लगती है, जिसमें एक अंधदृष्टि रखता है और दूसरी गांधारी जो सब सच जानकार भी अपनी आँखों पर से पट्टी नहीं हटाती है। दोनों ही मदांध राज शक्ति का पर्याय प्रतीत होते हैं। इन संन्दर्भों में यह नाटक आधुनिक भाव-बोध को ही प्रकट करता है। दूसरे दृश्य में नाटककार ने प्रहरियों के माध्यम से जो संवाद प्रस्तुत किया है वह सताधारियों की अनावश्यक नीतियों का बोधक होता है, जिसके जनता की भलाई का कोई सरोकार नहीं है लेकिन तब भी ऐसी नीतियाँ या योजनाएं घोषित की जाती हैं जो प्रजा अहितकारी हैं। तभी ये प्रहरी व्यंग्य करते हैं, आलोचना करते हैं, जिससे आधुनिक सत्ताधारियों की नीयत तो स्पष्ट होती ही है, जनता के प्रतीक रूप में ये सजग दृष्टा और भोक्ता भी प्रतीत होते हैं,

"दूसरा प्रहरी : लगता है तुमने घोषणा नहीं सुनी !

चौथा प्रहरी : घोषणा की अघोषणा। सीधी सी बात है, अगर राजा जुए को राष्ट्रक्रीड़ा घोषित करता है तो वह अपने आदेश से मनुष्य को घास भी चखा सकता है और..

तीसरा प्रहरी : और गधे को हलवा भी खिला सकता है !

पहला प्रहरी : चाम में मैं अधिक विश्वास नहीं करता सेवावृति करने वालों के शरीर पर या तो यह रहता नहीं या फिर मोटा पड़ता जाता है।

दूसरा प्रहरी : हम लोगों के शरीर पर तो है।

चौथा प्रहरी : तुम राजमहल के प्रहरी जल्दी बन गये। धीरे-धीरे इस पद पर पहुंचे होते तो इन सब ध्वनियों के अभ्यस्त हो गए होते.. यहाँ कभी बाढ़ आती है और कभी ठंडी-ठंडी बयार बहती है।"[41] इस प्रकार यह नाटक भी अंधा-युग के समान ही महाभारत के पश्चात् आज के आधुनिक युग में भी उन अंधवृत्तियों की बार-बार पुनरावृत्ति होने की बात कहता है। यहाँ इस नाटक में महाभारत की

कथा गौण है। नाटककार का मुख्य उद्देश्य आधुनिक संवेदना को और उस सांकेतिकता को प्रकट करना है। वह संवेदना और सांकेतिकता जो सदियों से सत्ताधरियों की गलत नीतियों के कारण जनता के अन्दर इस नाटक में पैदा होते दिखती है। सत्ता और जनता के मध्य उपजी इन प्रवृत्तियों का बोध प्रहरियों, नागरिकों की कल्पना और उनके स्वाभाविक संवादों से स्वतः ही होता है। सुयोधन के अन्दर जिस प्रकार सत्तारूढ़ होने की प्रबल आकांक्षा होती है वैसे ही तमाम राजनेताओं की भी होती है। जनता में दिशाहीनता, कुंठाएं, विकृतियाँ आदि ऐसे ही और भी गहराती जाती हैं। आज के आधुनिक सत्ताधारी भी वैसे ही सत्ता लोलुप हैं। अपनी कुटिलताओं में सत्य और धर्म का मुखौटा लगाए अपनी सत्ता के विस्तार में लगे हुए हैं, जिसके लिए यदि युद्ध भी करना पड़े तो उसे धर्म के नाम पर उपयुक्त सिद्ध करके राज्य को युद्ध में थकेल देते हैं, बिना सोचे कि युद्ध के पश्चात् राज्य और राज्य के नागरिकों, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शामिल जनता का क्या होगा ? गांधारी सुयोधन से कहती है, "जाओ, सुयोधन। नये युग के लिए नई नीति का निर्माण करो। एक नीति एक ही समय के लिए उपयोगी होती है। पहले युद्ध को खेल की तरह खेला जाता था, अब खेल को भी युद्ध की तरह लो।"[42]

इस प्रकार नाटक के पात्रों को प्रवृत्तियों के पर्याय के आधार पर दो वर्गों में बाँट सकते हैं। जैसे प्रथम वर्ग में शोषक वर्ग, सत्ता लोलुप वो पात्र आएँगे जिनकी नीतियों के कारण जनता तमाम कष्टों को भोगती है। जिसके कारण जनता दिग्भ्रमित और कुंठाग्रसित हो जाती है। नाटक के ऐसे पात्रों में धृतराष्ट्र, गांधारी, सुयोधन, सकुनी आदि आते हैं। इन सभी का उद्देश्य और लक्ष्य एक समान सत्तारूढ़ होना है। दूसरा वर्ग वह है जो शोषित है, जिसमें युधिष्ठिर, कुंती, द्रौपदी आदि पात्र आते हैं। नाटक में द्रौपदी जनता का पर्याय बन जाती है। पांच पतियों के होते हुए भी अपनी रक्षा हेतु उसे स्वयं खड़ा होना पड़ता है। उसके चरित्र और वाणी में स्पष्टता, प्रखर तेज, नाटक में उसकी हंसी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी व्यवस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है। कटु अनुभव उसके व्यक्तित्व को प्रखर बना देते हैं। तभी अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए स्वयं निडरपूर्वक

सबके सामने खड़ी हो जाती है। उसके अन्दर का भय, संकोच, शील सब समाप्त हो जाता है। महाभारत के युद्ध के पीछे उसका संकल्प ही प्रतीत होता है। अंततः नाटक में युद्ध समाप्त होने पर पुनः वह हंसती हुई दिखती है क्योंकि युद्ध में सब कुछ समाप्त हो जाता है, इस युद्ध में उससे पुत्र, भाई, भतीजे सब छिन जाते हैं। फिर वह सवाल करती है कि क्या युद्ध कोई समाधान दे सकता है ? "सचमुच युद्ध क्या समाधान दे सकता है ? उसके स्वर गूंजते रह जाते हैं- मैं सबकी अपराधिनी हूँ लेकिन मुझसे मेरे स्वर मत छीनो..मुझे यहीं रहने दो। मुक्त होने दो। प्रजा को प्रजा ही रहने दो।"[43]

इस प्रकार नाटक में आधुनिक संदर्भ, संकेत और प्रतीक ही महत्त्वपूर्ण रह जाते है। पात्रों की प्रवृत्तियां मुख्य रूप से दो कालों को जोड़कर समान धरातल पर लेकर आ जाती है। अतः यह नाटक भी अपने पौराणिक कलेवर में आधुनिक राजनैतिक हालातों को ही बयां करता है जो राजनैतिक मूल्यहीनता और अंधत्व राजनीति की ओर ही संकेत करता है। जिसके परिणाम स्वरूप जनता में भय, उपहास, आशंका, विद्रोह और अंततः इनसे राजनैतिक और सामजिक विद्रूपताएं ही जन्म लेती हैं।

2.10 रस-गन्धर्व

मणि मधुकर का हिंदी नाट्य लेखन में विशेष योगदान है। इन्होंने एब्सर्ड नाट्य रंग संदर्भो को लोक नाट्य रंग संदर्भो के साथ जोड़ने का प्रमुख कार्य किया है। इस नाटक की विशेषता यह है कि कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से एक प्रभावी नाटक है। नाटक को दो अंकों में विभक्त किया गया है। जिसे पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध कहा गया है। नाटक में किसी कथानक का आश्रय नहीं लिया गया है। नाटक आधुनिक संदर्भो को वहन करता है, जिसमें लोक नाट्य के तत्त्वों को समाहित किया गया है। नाटक का समय स्पष्ट नहीं है लेकिन पात्रों को धारनगरी के राजा भोज की प्रजा के रूप में चित्रित किया गया है। इस नाटक में मणि मधुकर ने परंपरागत नाट्य रूपों को आधुनिक चेतना से जोड़कर एक नवीन संदर्भ में प्रस्तुत किया है, "'रस-गन्धर्व' में विसंगति है- विसंगति का नाटक है, साहित्य शास्त्रीय स्थापनाओं से मुक्ति है, मूर्तता-अमूर्तता है और कल्पना- लोक है लेकिन उसे न मात्र एब्सर्ड

नाटक कहा जा सकता है, न यथार्थवादी न मात्र एक फैंटेसी और न प्रतीकात्मक नाटक। वस्तुतः उसकी सारी विशेषता अपने उस लचीलेपन में है, उस समन्वित सौंदर्य और संश्लिष्ट काव्य में है जो उसमें पैदा होती जाती है। उसमें पारंपरिक नाट्यतत्त्वों का, लोक-नाटक की उन्मुक्तता और लय-बहुलता का आकर्षक और कलात्मक प्रयोग किया गया है।"[44]

यह नाटक 'रस-गन्धर्व' मुख्यतः सामाजिक राजनैतिक विसंगतियों को खास कर राजनैतिक विसंगतियों को चित्रित करता है, जिसमें आम जनता पिसते ही रहती है। देश की स्वतन्त्रता के इतने दशकों बाद भी जनता राजनैतिक नीतियों का शिकार ही होती आई है। जनता राजनैतिक कठपुतलियां ही प्रतीत होती आई है। नाटककार इस नाटक में आम जनता की पिसती हुई जिंदगी का चित्रण चुभते हुए व्यंग्य और हास्य संवादों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। लेकिन नाटक की विशेषता यह है कि इसके लिए नाटककार ने न कोई गढ़ा-गढ़ाया कथानक चुना है, न कोई चर्चित पात्र योजना है, न ही नाटककार कथानक में क्रमबद्धता रखता है और न कोई अंतिम निष्कर्ष दिया है। किंतु इसके पश्चात् भी यह नाटक आज के आधुनिक समाज में राजनैतिक तंत्रों में पिसते हुए लोगों के दर्द को चित्रित करता है। लोगों के तकलीफों के लिए दोषी राजनैतिक व्यवस्था तंत्र पर व्यंग्य के माध्यम से चोट करता है। नाटक का मुख्य स्थान जेल का एक हिस्सा है। जेल का यह हिस्सा राजनैतिक अव्यवस्था रूपी कैदखाने का ही प्रतीक स्वरूप है। इस जेल में चार व्यक्ति कैद हैं- अ, ब, स, द जो आम जनता का ही प्रतीक हैं। इनके हास्य-व्यंग्य संवादों और चेष्टाओं में सीधे अर्थों में तो अटपटे प्रतीत होते हैं, लेकिन इनके दूसरे अर्थों को समझे तो उसमें आम जनता की पीड़ा, विवशता का ही बोध होता है। जिसमें सत्ता पक्ष इनका शोषण करता है, अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु जनता का सिर्फ इस्तेमाल करता है। किंतु जब जनता के विकास की बात आती है तो ये सबसे पहले उनके रास्ते को अवरुद्ध कर देते हैं, जिससे जनता विक्षिप्त और असंतुलित होती जाती है। प्रस्तुत नाटक में पात्र 'अ' का विक्षिप्तता की अवस्था में चिल्लाना इस तथ्य को पुष्ट करता है,

"सेल का खून, चाबी-ताले का खून

दाल में काले का खून

कमली वाले का खून, ईमली वाले का खून

गोर का खून, कांच- कटोरे का खून

बिन पानी सब सून-खून-खून

काला खून, गोरा खून।"[45]

नाटक की शुरुआत ही गोली, लड़ाई, खून, विस्फोट और कूड़े जैसे संकेतो से होती है। जिससे सत्ता और जनता के बीच के विरोधाभास की ओर संकेत हो जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् उत्पन्न सामाजिक स्थितियों का भयानक सत्य और राजनैतिक व्यवस्था की नग्नता चारों कैदियों के संवादों के माध्यम से सामने आती जाती है। चारों कैदियों की संवाद शैली, भाषा में गालियां, भाव आदि में एक विस्फोटक आवाज है जो बंदूकों में दिखायी गयी है। साथ ही चारों अपनी कुंठा और दिशाहीनता के बारे में कहते हैं कि वो क्या चाहते हैं ? जाना कहाँ है ? मंजिल और रास्ते किस दिशा में है ?

नाटक में प्रस्तुत प्रसंग और कैदियों की यह भाषा आधुनिक समाज और आज के व्यक्ति की प्रतीत होती है, जिसके व्यक्तित्व में एक कुंठा और दिशाहीनता आ चुकी है। उनके अन्दर व्यवस्था के विरुद्ध अविश्वास, क्रोध और घृणा ने जन्म ले लिया है, इसीलिए उनके अन्दर बहुत सारे सवाल हैं। जो सवाल आज की जनता के हो सकते हैं। अविश्वास और भाषा में ऐसी असंयमित गालियाँ आज की आधुनिक जनता की भी हैं जो दिशाहीन और कुंठित हो चुकी है। पात्र 'अ' और 'ब' के संवादों से नाटक के एक स्थल पर उनके सवाल और उनके हालातों का बोध होता है,

" अ : मौत तुम्हारी आँखों में हैं और जीवन तुम्हारी धमनियों में।

ब : क्या कर रहे हो तुम लोग ? जल्दी से काम पर लग जाओ। वह आ रहा है। वह संतरी। वह टूटी टांगवाला खच्चर। गरीबी हट गयी, कुर्सी पट गयी, रात कट गयी ?"[46]

नाटक में स्त्री पात्र है राजकुमारी, जो शापग्रस्त अप्सरा है तथा नाटक में चित्रित ये चार कैदी भी शापित गन्धर्व हैं। नाटक में कई स्तरों पर प्रतीकात्मकता है। नाटक में राजकुमारी कोई शक्ति नहीं बल्कि प्रवृत्ति के रूप में है। नाटक में वह विभिन्न संवेदनात्मक रूपों से जुड़ी हुई है। इसमें अंत में अपनी नियति और स्थिति से पुनः कैदी और संतरी से गन्धर्व बने ये लोग खुश नहीं रहते हैं। इसका कारण यथार्थ से उठाकर स्वप्न में रख दिया जाना होता है, फिर ये धिक्कारते हैं नाटककार को इस चालू फार्मूले के लिए और कहते हैं,

"द : निर्देशक भाड़े का टट्टू है और मनोरंजन मार्गी संस्थाओं के हाथों बिक चुका है।

अ-ब-स-द-ह : हम लेखक और निर्देशक की मिलीभगत का विरोध करते हैं।

स : ऐसा कोई नाटक नहीं खेलेंगे –

ह, द : जिसमें हम मनुष्य न रहकर गन्धर्व बन जायें।

सब (एक साथ) : हम गन्धर्व नहीं हैं। हम मनुष्य हैं और यह मानते हैं कि युद्ध में न देवताओं की विजय होती है, न दानवों की। मनुष्य के संकल्पों की विजय होती है।"[47]

नाटक की समाप्ति होती है अंतहीन अपना-अपना चेहरा ढूंढने की जारी कोशिश के साथ। नाटक के पूर्वार्द्ध के समाप्त होने से पूर्व संकेतो और व्यंग्यों की एक चुभती हुई तुकबंदी के माध्यम से आधुनिक जनता और सत्ता के बीच के संघर्ष को ही चित्रित किया गया है। अतःनाटक के पूर्वार्द्ध की समाप्ति सांकेतिकता, गतिशीलता, व्यंग्यात्मकता, तीखेपन और एक कसाव के साथ होती है।

नाटक के उत्तरार्द्ध में एक नया मोड़ आता है जब वही पात्र अ,ब,स और द दरजी, राहगीर, तथा जादूगर बन जाते हैं। फिर वही चारों पात्र श्रोता, अभिनेता, दर्शक, भोक्ता बनकर आते हैं। फिर रोचक रूप से प्रसंग भी बनते-बदलते जाते हैं। साथ ही संगीत, लयात्मकता, नृत्य, संवाद, मुद्रायें नाटक को गाते हुए एक अलग ढ़ंग से आधुनिक अर्थ व्यंजना सौंदर्य देते चले जाते हैं। नाटकीय कल्पना की दृष्टि से जो प्रमुख हो जाती है वह है फैंटेसी, परिकथा जो आम जनता के भाग्य निर्माण के कार्य को दर्शाती है, " स्वतः ही बहुत सार्थक व्यंग्य हो जाता है कि कैसे व्यवस्था आम जनता को उलझाती है, व्यर्थ के कार्यों -स्वप्नों में उलझाकर उसे मूल समस्या से, क्रान्ति और विद्रोह से, परिवर्तन से दूर हटाती है। इस अर्थ में फैंटेसी यहाँ अनिवार्य, सार्थक, रोचक अंग बन जाती है।"[48]

रस-गन्धर्व में एक स्वतंत्र रंग चेतना और एक विशेष लय देखी जा सकती है। जिसका कारण लोकधर्मिता के तत्त्वों को अपना लेना है। यह एक प्रकार से नए नाट्य रूप की विशेषता है। जहाँ पात्र स्वतः ही भिन्न-भिन्न भूमिकाएं अपना लेता है। कहीं भी इसकी प्रतीकात्मकता में बाधा नहीं आती है। इसकी अपनी लोक धुन के गीत-संगीत या नृत्य नाटक को कहाँ से प्रारंभ करते या दृश्य परिवर्तित करते हैं या स्पष्ट करते हैं। नाटक की काव्य लयात्मकता ही इस नाटक को विशिष्ट बनाती है, जो कि नाटक के प्रारंभ से अंत तक देखी जा सकती है। अतः इसे ही नाट्य रचना का मुख्य अंग कह सकते हैं। लोकधुन पर आधारित इस नाटक का गीत दृष्ट्व्य है,

"तू दुबला क्यों हो गया, रे भाई रामधनिया

तुझको क्या चिंता लग गयी, रे भाई रामधनिया

कब का यूं ही रहेगा ढांचा तू हड्डियों का

कब तक तेरे आँखों में सूनापन बरसेगा

टूट गया, पर बता, और अब

कितना टूटेगा, रे भाई, कितना टूटेगा ?

तू तो माटी में मिल गया, रे भाई रामधनिया।"[49]

अंततः इसे लोकनाट्य परंपरा और एब्सर्ड नाटक के तत्त्वों को समाहित कर एक आधुनिक नाटक कहा जाना गलत नहीं होगा। लोकनाट्य परंपरा जिसमें लोकगीतों की शैली, व्यंग्यों और संवादों के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के अस्त-व्यस्त जीवन में उत्पन्न विवशता, घृणा, असंतोष, कड़वाहट, विद्रोह की बेचैनी और मुक्ति की कामना हेतु आकुलता ही इस नाटक का उद्देश्य और सत्य है। साथ ही आधुनिक मनुष्य के अन्दर विभिन्न स्तरों पर चल रहे वैचारिक द्वंद्वों को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना इस नाट्य कृति का मुख्य लक्ष्य है।

2.11 कोर्ट मार्शल

स्वदेश दीपक कृत नाटक 'कोर्ट मार्शल' जिस वर्ष (1991 ई. में) प्रकाशित हुआ था, वह दशक सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से बहुत ही अस्थिर रहा है। वह हताशा, कुंठा, साम्प्रदायिक हिंसा, घृणा और अमानवीयता का दौर रहा है। वक्त के साथ आज तक प्रवृत्तियां, हालात कमोबेश वैसे ही विध्वंसक रहे हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था में परंपराओं से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था, जिसके आधार पर समाज आज भी बंटा हुआ है, उसकी ही एक अफसरशाही क्रूर प्रतिक्रिया इस नाटक में देखी जा सकती है। जिस कारण रामचंदर नामक एक सेना के जवान को अपने ही अफसर को गोली मारनी पड़ती है। ऐसी कौन सी मज़बूरी थी ? ऐसे कौन से हालात थे ? आज के आधुनिक युग में भी ऐसी कौन-सी व्यवस्था है जो किसी व्यक्ति को विद्रोही बना देती है। सेना जैसे व्यवस्था तंत्र में एक व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो देता है और हत्या कर देता है ? इन्हीं सवालों का उत्तर ढूंढ़ता हुआ यह नाटक आधुनिक युग में भी वर्ण-व्यवस्था और अफसरशाही में पिसते हुए आज के एक सत्य को उद्घाटित करता है। ऐसी परंपरा जो आधुनिक भारतीय समाज में तो रूढ़ प्रतीत होती है, किंतु यह परंपरा और व्यवस्था जिसे वर्ण-व्यवस्था कहते हैं वह आज भी

बहुत लोगों के व्यक्तित्व में भीतर तक समाहित है, "यह नाटक इसीलिए प्रभावित करता है कि वह आज के वर्तमान, उसकी क्रूर सच्चाई, भयावह अमानवीय तंत्र और आदमी की छटपटाहट और विद्रोह का बेहद प्रासंगिक और चुनौतीपूर्ण नाटक लगता है।"[50]

नाटक में वैसे देखें तो कोई विशेष कथानक तत्व नहीं है, न विशेष घटनाएं और न उनका विकास, किंतु इसके बाद भी नाटक एक घटना प्रसंग के माध्यम से आधुनिक समाज में आज भी व्याप्त धार्मिक और जाति व्यवस्था की उस संकीर्ण और रूढ़ परंपरा में विश्वास करने वालों की मानसिकता को चित्रित करता है। कथानक पर दृष्टि डालें तो एक छोटा-सा प्रसंग है जिसमें रामचंदर नामक एक सैनिक अपने दो अफसरों को गोली मार देता है, जिसमें एक की मौत हो जाती है। रामचंदर का भी कोर्ट मार्शल होता है। नाटक में गोली मारने के कारणों का सच जैसे-जैसे सामने आता जाता है वैसे-वैसे यह नाटक भारतीय समाज की उस रूढ़ परंपरा जिसे हम जाति और वर्ण-व्यवस्था के नाम से जानते हैं उसका अमानवीय और दमित और शोषित करने वाला चेहरा सामने आता है। जिससे आज भी हमारा समाज खुद को मुक्त नहीं कर पाया है, "बराबर की बात तो दूर, सोचने के स्तर पर भी हम अपने से छोटे को बराबर का अधिकार देने को तैयार नहीं। कारण वे सामंती प्रवृत्तियाँ, सामंती सोचने का तरीका, फ्यूडल टैंडंसीज जिनसे हमें अभी तक आजादी नहीं मिली।"[51]

इस नाटक में कई ऐसे पात्र हैं जो कि अवसरवादिता, ठंडी संवेदना, मूल्यहीनता तथा अमानवीय रूढ़िगत प्रवृत्ति के द्योतक और पोषक बनते हैं। जैसे-कर्नल सूरत सिंह, मि.कपूर, डॉक्टर गुप्ता, वकील तथा सूबेदार बलवंत सिंह आदि। इन सभी पात्र-चरित्रों ने आपस में ऐसी सांठ-गाँठ बना रखी है कि इसमें रामचंदर की पूरी अस्मिता, उससे जुड़ी वह घटना इन सभी को झूठ से छिपा लेने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु धीरे-धीरे उस सच से पर्दा उठता चला जाता है जिसमें आखिरकार रामचंदर को मजबूरन अपने ही अफसर पर गोली चलाने और विद्रोह करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

दो अंकों के इस नाटक के पहले अंक में घटना और समस्या का विस्तार किया गया है तो दूसरे अंक में नाट्य संघर्ष और उसका निष्कर्ष देखने को मिलता है। दो अंकों के इस नाटक में पात्रों के माध्यम से मानवीय चरित्र के कई पक्ष सामने आते हैं जिसे इस नाटक की मौलिकता कहा जा सकता है। जैसे नाटक में पात्रों का यथार्थ और वास्तविकता, क्रूर सच, कौतूहल और जिज्ञासा के साथ करुणा और क्रूरता का एक सच जो आज भी कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में देखने को मिल ही जाता है। नाटक में रामचंदर आज के आधुनिक युग में भी इस जाति व्यवस्था में पिसते हुए आम आदमी का प्रतीक बन जाता है और उसका पूरे नाटक में मौन रहना और सिर्फ यस सर! यस सर! कहना अपने विद्रोह को स्वीकार कर सत्य के प्रति अडिग रहने की ओर संकेत करता है। नाटक में मुकदमा अपने आप में अर्थ व्यंजक है, "कोर्ट मार्शल मुकदमे की प्रक्रिया का ही नाटक है इसीलिए उसमें स्वंय मुकदमा ही अर्थ-व्यंजक हो जाता है। केंद्रीय पात्र रामचंदर का पूरे नाटक में मौन रहना भी अर्थ-व्यंजना, सांकेतिकता और प्रतीकार्थ को बढ़ाता है, गहरा करता है। रामचंदर केवल 'सर-सर' करता है।"[52]

भारतीय समाज हमेशा से ही जातिगत व्यवस्था में बंटा हुआ रहा है। इस व्यवस्था में मानव ने मानव का सदा से ऊँची और नीची जाति के नाम पर शोषण और भेद-भाव का व्यवहार किया है। वक्त के साथ आज आधुनिक युग में यह परंपरा रूढ़ तो हो गई किंतु समाज आज भी पूर्णतः इससे मुक्त नहीं हो पाया है। तभी रामचंदर जैसे पात्रों की कल्पना नाटककार स्वदेश दीपक और अन्य नाटककार करते हैं। आज भी इस व्यवस्था के विरुद्ध समाज में लोग आवाज उठाते रहे हैं किंतु कई बार यह शोषण इस हद तक बढ़ जाता है कि वह एक हिंसा का रूप धारण कर लेता है। नाटक का रामचंदर ऐसे ही शोषण का शिकार, एक पिछड़ी जाति का सेना में कार्यरत एक सिपाही होता है जो अपने ही कार्यस्थल पर अपने से बड़े आफिसर के शोषण का शिकार होता है जिसके परिणाम स्वरूप अंततः वह गोली चलने पर मजबूर हो जाता है। कभी-कभी शोषण शारीरिक न होकर मानसिक होता है और रामचंदर भी अपने इस मानसिक शोषण, जिसमें उसे उसकी जाति विशेष से इरादतन अपमानित

किया जाता है और शायद ऐसी ही परिस्थिति में एक व्यक्ति के अन्दर सशस्त्र विद्रोह जन्म लेता है। रामचंदर भी अंततः बंदूक उठा गोली चलाने पर मजबूर हो जाता है। अंत जानते हुए भी न उसे किसी बात का डर होता है न परिणाम की चिंता तभी नाटक के अंत में भी वह कर्नल सूरत सिंह द्वारा सजा को स्वीकारने के लिए तैयार दिखता है। दोनों के मध्य संवाद से रामचंदर के इस चरित्र का बोध होता है,

" सूरतसिंह : रामचंदर, तुम्हें मौत से डर लगता है ?

रामचंदर : नहीं सर, रामचंदर किसी से नहीं डरता।

सूरतसिंह : मैं कल सुबह तुम्हें सजा-ए-मौत दे रहा हूँ, तुम्हें देने के लिए मेरे पास सिवाय मृत्युदंड के और कुछ नहीं।

रामचंदर : (सीना तानकर) आप जो देंगे, सर आँखों पर सर।"[53]

इस प्रकार स्वदेश दीपक द्वारा रचित यह नाटक 'कोर्ट मार्शल' आज के आधुनिक युग के कई प्रश्नों को हमारे सामने खड़ा करता है जैसे कि नाटक में कोर्ट मार्शल रामचंदर का होता है लेकिन क्या यह आज के आधुनिक समाज का भी कोर्ट मार्शल नहीं ? क्या यह सवाल आज के आधुनिक समाज से नहीं है कि आज भी जातिगत व्यवस्था और मानसिकता क्यों है ? यह कब तक समाज में उपस्थित रहेगी ? क्या यह कोर्ट मार्शल समय और कानून का नहीं है ? क्या यह क्रूर व्यवस्था तन्त्र का नहीं है जहाँ आज भी भेद-भाव किया जा रहा है ? कई ऐसे प्रश्न यह नाटक अपने समकालीन सामाजिक और अपने लोकतंत्र से करता है। जहाँ समता और समानता के अधिकार की बात की जाती है वही आज भी रामचंदर जैसे पात्रों के साथ जातिगत भेदभाव अक्सर सुनने को मिल जाते हैं। अतः यह नाटक 'कोर्ट मार्शल' हमारे समाज और लोकतंत्र की विसंगतियों को, उसकी गहरी चुप्पी को तोड़ता है तथा रामचंदर जैसे शोषित व्यक्ति के विद्रोह को चित्रित करता है जहाँ अंततः सारी सच्चाई जानने के बाद उसका विद्रोह सार्थक और प्रासंगिक लगने लगता है।

निष्कर्षतः स्वरूप कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक भारतीय समाज,परंपरा उसके बदलते आधुनिक सकारात्मक-नकारात्मक मूल्यों आदि को अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं। एक तरफ स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति का स्वरूप विघटित होता चला गया जिससे राजनैतिक विघटित आकांक्षाओं ने सामाजिक व्यवस्था को कोई भी ठोस आधार प्रदान नहीं किया, इसीलिए आधुनिक समाज तथा परिवार, शिक्षा और रोजगार के अभाव में भटकता दिखता है। निजी रूप से लोगों का नैतिक पतन होने लगा, जिससे पारिवारिक विघटन आरंभ होता है। पश्चिमी परंपरा और संस्कृति के अनुसरण ने परिवार में रिश्तों का महत्त्व और अपनत्व कम कर दिया है। इन पारिवारिक विषमताओं ने सामाजिक विषमता और कुरीतियों को जन्म दिया और राजनीति, समाज, धर्म, परिवार आदि सभी संस्थाएं अर्थ यानी धन केन्द्रित होती चली गयी हैं। प्रेम, आस्था, भरोसा, कर्तव्य, आदि ने मानो समाज में स्थान ही खो दिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक इन सारी विसंगतियों को अपनी नाट्य रचना में स्थान देते हैं।

जगदीशचंद्र माथुर का 'कोणार्क' जिसमे एक कलाकार, एक शिल्पकार के साथ सत्ता द्वारा किये गए अन्याय-अत्याचार को दिखाया गया है। इस नाटक में नाटककार ने इतिहास और मिथकीय कथा द्वारा जीवन की जटिल अनुभूतियों को प्रकट किया है, जिसमें एक कलाकार के जीवन संघर्ष और सत्ता के साथ उसकी टकराहट को दर्शाया गया है। एक कलाकार का अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु सत्ता का विरोध करते हुए दिखाया गया है। अपने स्वाभिमान और अपनी कला की खातिर आज भी कलाकारों को संघर्ष करते देखा जा सकता है। धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' एक क्लासिकल नाट्य रचना है जिसमें आधुनिक मानवीय जीवन और उसकी आत्महीन और विवेकहीन जीवन दृष्टि को प्रस्तुत किया गया है जो कि उसे विनाश की ओर धकेलता है। महाभारत के युद्ध और अंत के परिणाम के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणाम को ही प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का नाटक 'सूर्यमुख' देखें तो यह नाटक भी महाभारत की पृष्ठभूमि को ही केन्द्रित करके लिखा गया है, किंतु इनके नाटक की विशेषता है कि इस नाटक के माध्यम से

स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक भारतीय सामाजिक राजनैतिक समस्याओं को उजागर करने के साथ ही साथ अपने परंपरागत मूल्यों के प्रति आधुनिक समाज की अवमानना को चित्रित किया गया है। नाटक के कथानक और पात्र महाभारत और पुराण से लिए गए हैं। नाटक उत्तर महाभारत की मिथकीय कथा के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत विषमताओं को उजागर करता है। मिथकीय कथानक के द्वारा आधुनिक रूपों को चित्रित किया। इसके अलावा चाहे शंकर शेष द्वारा रचित नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' हो अथवा ज्ञान अग्निहोत्री द्वारा रचित नाटक 'शुतुरमुर्ग' या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' सभी की विसंगतियां लगभग एक समान हैं। ठीक उसी प्रकार मुद्राराक्षस का नाटक 'योर्स फेथफुली' हो या दया प्रकाश सिन्हा का 'कथा एक कंस की' हो या फिर गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' अथवा मणि मधुकर का 'रस-गन्धर्व' हो या स्वदेश दीपक द्वारा रचित नाटक 'कोर्ट-मार्शल' इन सभी नाटकों में स्वातंत्र्योत्तर बदलते हुए भारतीय समाज, राजनीति, परिवार और व्यक्तिगत विषमताओं को चित्रित किया गया है। इनमें से कुछ नाटकों में परंपरागत और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं पात्रों के माध्यम से तो कुछ में आधुनिक पृष्ठभूमि के माध्यम से आधुनिक मानव जीवन की विसंगतताओं को उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया गया है।

संदर्भ-

1. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण- दूसरा, 2015; पृ 10.
2. नवल, हरीश; हिंदी नाटक: तीन दशक; अनंग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण, प्रथम, 2004; पृ.25
3. वही; पृ 25 .
4. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 63 .
5. वही; पृ 63, 64.
6. भारती, धर्मवीर; अंधा युग; किताब महल, प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2010; पृ 3 .
7. वही; पृ 77.
8. वही; पृ 81.
9. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 71.
10. भारती, धर्मवीर; अंधा युग; किताब महल, प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2010; पृ 40, 41.
11. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 73 .
12. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2002; पृ 94 .
13. राठी, नीलम; साठोत्तर हिंदी नाटक (मिथकीय-तत्त्वों के संदर्भ में); संजय प्रकाशन, प्रगति विहार, दिल्ली; संस्करण, 2001; पृ 143.
14. वही; पृ 145 .
15. वही; पृ 146 .
16. वही; पृ 146 .
17. वही; पृ 147 .

18. वही; पृ 148 .

19. शेष, शंकर; एक और द्रोणाचार्य; परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, नई दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 5 .

20. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2002; पृ 259 .

21. शेष ,शंकर; एक और द्रोणाचार्य; परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, नई दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 17 .

22. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 174 .

23. शेष, शंकर; एक और द्रोणाचार्य; परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, नई दिल्ली; संस्करण-2013; पृ 23 .

24. वही; पृ 75 .

25. अग्निहोत्री, ज्ञानदेव; शुतुरमुर्ग;भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड, नई दिल्ली; संस्करण, 2011; पृ 29 .

26. नवल, हरीश; हिंदी नाटक: तीन दशक; अनंग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण, प्रथम, 2004; पृ.58.

27. वही; पृ 58 .

28. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 185 .

29. नवल, हरीश; हिंदी नाटक: तीन दशक; अनंग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण, प्रथम, 2004; पृ 111.

30. वही; पृ 111 .

31. वही; पृ 112 .

32. वही; पृ 113 .

33. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 185 .

34. वही; पृ 187 .

35. नवल, हरीश; हिंदी नाटक: तीन दशक; अनंग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण, प्रथम, 2004; पृ 134.
36. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 166 .
37. नवल, हरीश; हिंदी नाटक: तीन दशक; अनंग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण, प्रथम, 2004; पृ 134.
38. खेमानी, कुसुम; हिंदी नाटक के पांच दशक; राधकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, दूसरा, 2015; पृ 166 .
39. वही; पृ 167 .
40. रस्तोगी, गिरीश; हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष; लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2002; पृ 224, 225 .
41. वही; पृ 225, 226 .
42. वही; पृ 229 .
43. वही; पृ 230 .
44. वही; पृ 249 .
45. वही; पृ 250 .
46. वही; पृ 250 .
47. वही; पृ 251 .
48. वही; पृ 252 .
49. वही; पृ 254 .
50. वही; पृ. 276 .
51. वही; पृ 277 .
52. वही; पृ 278 .
53. वही; पृ 280 .